वर्ष - 26 अंक 107 अप्रैल-जून, 2009

वर्ष - 26 अंक 107 अप्रैल-जून, 2009

पुलिस विज्ञान

(त्रैमासिक पत्रिका)

अप्रैल-जून, 2009

सलाहकार समिति

प्रसून मुखर्जी

महानिदेशक

शेषपाल वैद

निदेशक (एस.पी.)

संपादक : **दिवाकर शर्मा**

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

ब्लाक-11, 3 एवं 4 मंजिल

सी.जी.ओ. कम्पलैक्स, लोदी रोड

नई दिल्ली-110003

संपादकीय

पुलिस विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका का अप्रैल-जून, 2009 का अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। जैसा कि संपादक मंडल का यह प्रयास रहता है कि पत्रिका में पुलिस, न्यायालयिक विज्ञान व अन्य संबंधित विषयों की प्रामाणिक व प्रासंगिक जानकारी प्रदान की जाए। अतः अपराधों को सुलझाने में पुलिसकर्मियों द्वारा किस प्रकार की कार्य प्रणाली अपनाई जाए, अपराधों से निपटने तथा अपराध होने की संभावनाओं से संबंधित कुछ ओजस्वी विचार तथा प्रैस की भूमिका पर वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों तथा समाज के कुछ प्रबुद्ध वर्ग द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जो आम पुलिस-कर्मी के साथ सभी वर्ग के लिए उपयोगी होते हैं।

इस अंक में इस बार पुलिस-कर्मियों के लिए **भारत में पुलिस सुधार, नक्सलवादियों के चलायमान युद्ध की विवेचना, संवेगात्मक बुद्धि एवं पुलिस सुधार, महिला बंदियों की समस्याएं, मानवाधिकार, पुलिस और आतंकवाद, पुलिस सुधार में नई दिशा दृष्टि की आवश्यकता, उग्रवाद के खिलाफ युद्ध में पुलिस सुरक्षाकर्मियों, मीडिया तथा आम जनता की पारस्परिक भूमिका** से संबंधित लेख भी हैं। पत्रिका के सुधी पाठक पत्रिका को और अधिक सूचनाप्रद व उपयोगी बनाने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकते हैं। आशा है कि पत्रिका में सम्मिलित सभी लेख पाठकों को उपयोगी लगेंगे और वे अपने विचारों से संपादक मंडल को अवगत कराते रहेंगे। आपके विचारों का सहर्ष स्वागत है।

दिवाकर शर्मा

संपादक

वर्ष - 26 अंक 107 अप्रैल-जून, 2009

अनुक्रम

भारत में पुलिस सुधार
• *डा. एस. के कटारिया* 7

नक्सलवादियों के चलायमान युद्ध की विवेचना
• *राकेश कुमार सिंह* 32

संवेगात्मक बुद्धि एवं पुलिस सुधार
• *अजित यादव* 37

महिला बंदियों की समस्याएं
• *डा. प्रीति मिश्रा* 43

मानवाधिकार, पुलिस और आतंकवाद
• *डा. ओमराज सिंह विश्नोई* 49

पुलिस सुधार में नई दिशा दृष्टि की आवश्यकता
• *कु. दीप्ती श्रीवास्तव* 56

उग्रवाद के खिलाफ युद्ध में पुलिस सुरक्षाकर्मियों, मीडिया तथा आम जनता की पारस्परिक भूमिका
• **संजय रेहिला** 60

समीक्षा समिति के सदस्य

प्रो. एम. ज़ैड. खान, नई दिल्ली
प्रो. एस.पी.श्रीवास्तव, लखनऊ
श्री एस.वी.एम त्रिपाठी, लखनऊ
प्रो. बलराज चौहान, भोपाल
प्रो. अरुणा भारद्वाज, नई दिल्ली
प्रो. जे.डी. शर्मा, सागर, (म.प्र.)
प्रो. स्नेहलता टंडन, नई दिल्ली
डा. दीप्ति श्रीवास्तव, भोपाल
प्रो. वी.के. कपूर, जम्मू
डा. शैलेंद्र कुमार चतुर्वेदी, मेरठ
डा. अरविंद तिवारी, मुंबई
डा. उपनीत लल्ली, चंडीगढ़
श्री एस.पी. सिंह पुंडीर, लखनऊ
श्री पी. डी. वर्मा, छत्तीसगढ़
श्री वी.वी.सरदाना, फरीदाबाद
श्री सुनील कुमार गुप्ता, नई दिल्ली

'पुलिस विज्ञान' में प्रकाशित लेखों में लेखकों के विचार निजी हैं। इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की सहमति आवश्यक नहीं।

कवर डिजायन : राहुल कुमार

अक्षरांकन एवं पृष्ठ सज्जा : रचना इंटरप्राइजिज, वी-8, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

भारत में पुलिस सुधार

डा. एस.के. कटारिया

(लोक प्रशासन के व्याख्याता एवं राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में यूजीसी पोस्ट डाक्टोरल रिसर्च फैलो हैं।)

81/91, नीलगिरी मार्ग, मानसरोवर, जयपुर-20

मानव समाज में अराजकता पर नियंत्रण पाने तथा मानवीय व्यवहार को सुस्पष्ट नियमों के अंतर्गत निर्देशित करने हेतु 'राज्य' नामक संस्था तथा इससे जुड़ी प्रशासनिक व्यवस्था का जन्म हुआ है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी इसलिए कहा जाता है कि उसकी प्रत्येक आवश्यकता, गतिविधि एवं व्यवहार का सीधा संबंध 'समाज' से होता है। इसलिए अरस्तू कहते हैं—"यदि कोई मनुष्य ऐसा है जो समाज में नहीं रह सकता हो या जिसे समाज की आवश्यकता नहीं हो क्योंकि वह अपने आप में पूर्ण है तो वह अवश्य ही एक जंगली जानवर या देवता होगा।" मानव सभ्यता एवं संस्कृति के क्रमिक विकास के साथ ही विभिन्न सामयिक कानूनों का निर्माण हुआ है। इन कानूनों की क्रियान्विति और लोक व्यवस्था के संधारण हेतु 'पुलिस' नामक तंत्र विकसित हुआ है।

परम्परागत रूप से पुलिस की छवि सत्ताधीशों एवं प्रभावशाली व्यक्तियों के लिए कार्य करने वाली उस संस्था के रूप में रही है जो आम आदमी के लिए एक 'भय' का कार्य करती है। पुलिस की यह छवि विश्व के लगभग सभी देशों में एक समान रही है। हां, देश, काल एवं परिस्थितिवश इसमें किंचित् भिन्नता हो सकती है।

बीसवीं सदी के आखिर दो दशकों में वैश्विक स्तर पर सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक, राजनीतिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में भारी परिवर्तन आए हैं। इन परिवर्तनों की बयार से पुलिस भी अछूती नहीं रही। बदलती हुई परिस्थितियों में पुलिस को आधुनिक, उत्तरदायी, संवेदनशील, प्रभावी एवं पारदर्शी बनाने हेतु न्यूनाधिक मात्रा में सभी देशों में प्रयास हुए हैं तथा अभी भी हो रहे हैं। कॉमनवैल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव का दृढ़ मत है कि—"पुलिस सुधारों की न तो उपेक्षा की जा सकती है और न ही देरी।"

पुलिस की छवि एवं कार्यप्रणाली चाहे संयुक्त राज्य अमेरिका जैसा विकसित देश हो या भारत जैसा विकासशील देश, सभी जगह विवादास्पद एवं शर्मनाक रही है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 3 मार्च, 1991 को घटित रोडनी किंग पिटाई केस ने बहुत सारे पुलिस सुधारों को जन्म दिया। हुआ यूं कि लॉस एंजिल्स में रोडनी किंग नामक अफ्रीकी-अमेरिकी व्यक्ति फ्री वे पर तेज गति से कार चला रहा था। पुलिस ने किंग को रोकना चाहा तो वे नहीं रुके अतः चार पुलिसकर्मियों ने किंग को गाड़ी से निकाल कर निर्ममता से पीटा। इस बर्बरतापूर्ण कार्रवाई में किंग को 56 बार डण्डे तथा लात-घूंसे लगे अतः सिर में 12 जगहों पर फ्रैक्चर हो गए। इस सम्पूर्ण घटनाचक्र को पास ही के एक मकान की बॉलकनी में खड़े जॉर्ज हॉलीडे ने अपने वीडियो कैमरे में कैद कर लिया तथा एक टी.वी. चैनल को बेच दिया। इस टेप को सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित कर दिया गया। स्थानीय नागरिकों (पूर्व पुलिस अधिकारियों से युक्त) की जूरी ने चारों पुलिसकर्मियों को दोषी नहीं माना। परिणामस्वरूप इस मनमाने अदालती फैसले के विरुद्ध लॉस एंजेल्स में हिंसा भड़क उठी तथा 60 व्यक्ति मारे गए एवं 3000 घायल हुए। अन्ततः संघीय सरकार ने इस प्रकरण की पुनरीक्षा कराई तथा दो पुलिसकर्मियों को सजा हुई। किंग ने पुलिसकर्मियों के विरुद्ध नहीं बल्कि राज्य सरकार के विरुद्ध यह कहकर दावा किया कि **अच्छी पुलिस प्रदान करना राज्य का कर्तव्य है।** किंग को सरकार द्वारा भारी मुआवजा (38 लाख डालर) दिया गया। बाद में The Violent Crime Control and Law Enforcement Act, 1994 (Biden Crime Law) पारित हुआ। इस कानून ने अटॉर्नी जनरल को पुलिस सुधारों के अधिकार दे दिए। अन्ततः न्याय विभाग

एवं राज्य सरकारों के बीच बेहतर पुलिस प्रदान करने की सहमति डिक्री पर हस्ताक्षर हुए।

उत्तरी आयरलैण्ड में पुलिस की भूमिका एवं छवि भारतीय पुलिस की भांति क्रूर, पक्षपातपूर्ण तथा भ्रष्ट तंत्र के रूप में मानी जाती रही है। अप्रैल, 1991 में हुए 'बेलफास्ट समझौते' के पश्चात् वहां 'The Independent Commission on Policing for Northern Ireland (Patten Commission) का गठन किया गया। आयोग ने पुलिस एवं जनता संबंधों का गहराई से विश्लेषण किया तथा अपने अन्तिम रिपोर्ट (Overseeing Change) में यह सुझाया कि एक ऐसा Oversight Commissioner होना चाहिए जो सम्पूर्ण पुलिस तंत्र का न केवल समय-समय पर मूल्यांकन करे बल्कि सुधार हेतु कार्यक्रमों की निगरानी भी करे। यह आयुक्त आयोग द्वारा सुझायी गई सिफारिशें की क्रियान्विति भी देखे। महत्त्वपूर्ण सुझाव यह था कि ऐसा आयुक्त ग्रेट ब्रिटेन या आयरलैण्ड का नहीं हो सकता है। अतः मई, 2000 में टॉम कॉन्सटेन्टाईन को Oversight Commissioner बनाया गया जो कि पूर्व में अमेरिकी 'ड्रग प्रवर्तन प्रशासन' में पुलिस विशेषज्ञ थे। इस आयुक्त ने निष्पक्षतापूर्वक कार्य कर उत्तरी आयरलैण्ड में पुलिस सुधारों को गति प्रदान की।

भारत में जिस आधुनिक पुलिस का गठन सन् 1861 के अधिनियम के माध्यम से हुआ है, वह सन् 1857 की क्रांति के पश्चात् पनपी अंग्रेजों की मजबूरी थी। ब्रिटिश शासकों को मूलतः ऐसी पुलिस की आवश्यकता थी जो प्राथमिक रूप से जनता पर शासकों का भय स्थापित कर सके, क्रांतिकारियों पर निगरानी रख सके, अंग्रेज अधिकारियों के निर्देशन में भारतीय सिपाही केवल 'यस सर' बोल सके तथा 'मुखबिर' के माध्यम से समस्त प्रकार की गोपनीय एवं महत्त्वपूर्ण सूचनाएं एकत्र कर शासकों तक भेज सके।

यद्यपि भारतीय पुलिस के इतिहास के पन्ने क्रूर एवं निर्मम प्रकरणों से भरे पड़े हैं तथापि आपातकाल (1975-77) के दौरान हुई ज्यादतियों को सर्वाधिक उल्लिखित किया जाता है। जनता पार्टी के शासन में राष्ट्रीय पुलिस आयोग (धर्म वीर) का गठन इसी संदर्भ में किया गया था ताकि एक उत्तरदायी पुलिस का निर्माण हो सके। बिहार, उत्तरप्रदेश, पंजाब, जम्मू-कश्मीर तथा महाराष्ट्र पुलिस के अत्याचारों, शोषण एवं मनमानी के प्रसंग अधिक चर्चित रहे हैं। तुलनात्मक रूप से शांत एवं कुशल माने जाने वाले राजस्थान की पुलिस भी कम चर्चित नहीं रही है। एक प्रकरण ने राज्य पुलिस की सारी पोल खोल दी। 05 फरवरी, 1994 को बाड़मेर शहर (राजस्थान) के सदर पुलिस थाने में जुगतराम नामक व्यक्ति का पुलिसकर्मियों ने लिंग ही काट डाला था। विश्व स्तर पर चर्चित इस प्रकरण ने भारत की क्रूर एवं निर्दयी पुलिस की छवि प्रस्तुत की। अन्ततः राजस्थान सरकार ने यह प्रकरण सी.बी.आई. को सौंप दिया था।

11 वर्ष पश्चात् फास्ट ट्रेक अदालत ने प्रकरण में लिप्त आरोपी तीन पुलिसकर्मियों को अलग-अलग यथा—5 वर्ष, 10 वर्ष तथा आजीवन कारावास की सजा सुनाई। पंजाब पुलिस पर यह आरोप रहा है कि उसने एक महिला के माथे पर **'जेबकतरी'** शब्द गुदवा दिया था। सन् 1980 में भागलपुर (बिहार) जिले में अपराधियों को सबक सिखाने के नाम पर पुलिस ने **33 कैदियों की आंखों में तेजाब** डालकर उन्हें अंधा बना दिया था। सन् 1981 का **माया त्यागी प्रकरण** भी बहुत चर्चित रहा था जिसमें बागपत (उत्तर प्रदेश) में इस गर्भवती महिला के साथ थाने में सामूहिक बलात्कार कर नंगा करके गांव में घुमाया गया था। उत्तर प्रदेश पुलिस ने ही सन् 1994 में उत्तराखण्ड की मांग कर रहे आंदोलनकारियों पर मुजफ्फरनगर में न केवल लाठी-गोली बरसाई थी बल्कि कई महिलाओं के साथ सरेआम सामूहिक बलात्कार के आरोप भी पुलिस पर लगे थे। इलाहाबाद उच्च न्यायालय में **न्यायाधीश आनन्द नारायण**

मुल्ला ने एक निर्णय में कहा था—**"हमारे देश की पुलिस गुंडों का सर्वाधिक संगठित गिरोह** है।" इस प्रकार दिसम्बर, 2006 में **निठारी कांड** (नोएडा के पास) खुला तो पता चला कि दर्जन भर बच्चे शृंखलाबद्ध ढंग से हत्या के शिकार हुए हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को प्राप्त होने वाली कुल शिकायतों में आधी से अधिक शिकायतें पुलिस द्वारा प्रताड़ना एवं भ्रष्टाचार से संबंधित होती हैं।

संकीर्ण स्वार्थों से युक्त भारतीय राजनीति तथा शिथिल न्यायिक प्रणाली के साये में पनपती भ्रष्ट एवं अकर्मण्य पुलिस से समूचा समाज त्रस्त रहा है। सम्भवतः इसी कारण सन् 1964 में भारत में तत्कालीन **अमेरिकी राजदूत प्रो. जे.के. गालब्रेथ** ने भारतीय लोकतंत्र को **कार्यशील अराजकता** कहा था। किसी भी सभ्य एवं संगठित समाज में कानून तथा व्यवस्था का सुदृढ़, प्रभावी और समयानुकूल बने रहना प्राथमिक आवश्यकता है। भारत जैसे विकासशील, कल्याणकारी एवं प्रजातांत्रिक देश में औपनिवेशिक काल की पुलिस प्रणाली बनाए रखना अप्रासंगिक है।

भारत में पुलिस शब्द ही अपने आप में भय, अविश्वास तथा क्रूरता का परिचायक बना हुआ है। फिल्मों, कथा, कहानियों, गली-मौहल्लों के किस्सों से लेकर उस व्यक्ति के संस्मरणों तक जो पुलिस थाने हो आया है और यहां तक कि वह व्यक्ति जो कभी पुलिस थाने गया ही नहीं, सभी की दृष्टि में पुलिस से बचना ही श्रेयकर है। जिस स्वतंत्र, सम्प्रभु, लोकतांत्रिक तथा लोक कल्याणकारी राज्य में पुलिस की ऐसी छवि हो कि रोते बच्चे के लिए मां कहती है—"चुप हो जा, नहीं तो पुलिस आ जाएगी।" तो यह शर्म तथा चिन्ता दोनों प्रकार का विषय है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पुलिस थानों में आम व्यक्ति के साथ नितांत अमानवीय व्यवहार होता है, शिकायतों तथा जांच प्रकरणों के साथ छेड़खानी की जाती है, गवाहों को भ्रमित किया जाता है, गाली-गलौच के बिना बात पूरी नहीं होती, न्यायालयों के साधारण सम्मन तो क्या गिरफ्तारी वारण्ट तक तामील नहीं होते तथा आम व्यक्ति के लिए कानून रक्षक की भूमिका नहीं निभाता है। यदि पुलिस के प्रति जनता में अविश्वास तथा भय है तो यह अनावश्यक या काल्पनिक नहीं है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की वार्षिक रिपोर्ट में प्रतिवर्ष पुलिस की जो वास्तविक तस्वीर प्रमाण सहित प्रस्तुत की जाती है वह रोंगटे खड़े कर देती है।

जिस स्वतंत्र देश में औसतन 200 व्यक्ति प्रतिवर्ष पुलिस थानों में तथा 1100 व्यक्ति कारागारों में दम तोड़ देते हैं वहां की पुलिस की छवि स्वप्रमाणित है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की सन् 2005 की रिपोर्ट के अनुसार देश में कुल पुलिसकर्मियों में से 4.6 प्रतिशत दागी हैं। मध्य प्रदेश के 26.6 प्रतिशत पुलिस कार्मिक विभिन्न आरोपों में घिरे हैं जबकि राजधानी दिल्ली दूसरे स्थान (12.3 प्रतिशत) पर थी।

सन् 1857 की क्रांति से उपजा सन् 1861 का भारतीय पुलिस अधिनियम

सन् 1857 का सिपाही विद्रोह भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भी कहलाता है। इस क्रांति के पश्चात् ब्रिटिश शासकों ने तीन बड़े परिवर्तन किए थे। एक तो भारत की बागडोर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से छीन कर सीधे ब्रिटिश राज के अधीन कर दी गई। दूसरा सुगम एवं शीघ्र परिवहन और संचार हेतु रेलवे का महत्त्व समझा, अतः देश भर में रेलवे लाइनें बिछाने का सर्वे शुरू हुआ। तीसरा भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 बनाया गया।

27 मार्च, 1857 को बैरकपुर में तैनात 34 नैटिव इन्फैण्ट्री के युवा सिपाही मंगल पाण्डे के विद्रोह से पनपे असंतोष ने यह भी सिद्ध किया कि इस क्रांति का एकमात्र कारण चर्बीयुक्त कारतूस नहीं थे, इसीलिए सन् 1860 में प्रथम पुलिस आयोग बनाया गया जिसने 'पुलिस' विषय पूर्णतया राज्यों को सौंपने, सिपाही का वेतन बढ़ाने, प्रांतों में महानिरीक्षक का पद बनाने तथा जिला मजिस्ट्रेट के

अधीन पुलिस बल रखने की सिफारिश की। सन् 1857 के राष्ट्रव्यापी विद्रोह से अचम्भित ब्रिटिश हुकूमत के लिए यह आवश्यक था कि पुलिस तंत्र को नए सिरे से बुना जाए। इसी क्रम में सन् 1861 में पुलिस अधिनियम बनाया गया। भारतीय पुलिस तंत्र की आलोचना करते समय इस कानून की चर्चा अवश्य होती रही है क्योंकि लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक यह कानून देश में लागू रहा है।

भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 में वर्णित प्रावधान सीधे-सीधे मौलिक अधिकारों पर चोट करते थे। व्यक्ति के समानता के अधिकार को रौंदने वाला यह कानून मानवीय गरिमा पर क्रूरता को थोपता था। इस अधिनियम में वर्णित बहुत-सी धाराएं पुलिस तंत्र को निरंकुश बनाती थीं। धारा-13 में प्रावधान था कि पुलिस अधीक्षक या उससे उच्च अधिकारी जिला मजिस्ट्रेट (जिला कलक्टर) के निर्देश पर 'अतिरिक्त पुलिस अधिकारियों' की नियुक्ति कर सकते थे। किसी स्थान पर शांति स्थापना हेतु नियुक्त होने वाले इन अतिरिक्त पुलिस अधिकारियों की नियुक्ति रेलवे तथा अन्य कार्यस्थलों पर भी हो सकती थी। इसी अधिनियम की धारा-15 में अतिरिक्त पुलिस बल की **क्वार्टरिंग** की व्यवस्था की गई थी। इसका तात्पर्य यह था कि राज्य सरकार किसी क्षेत्र को अशांत या खतरनाक घोषित करके वहां अतिरिक्त पुलिस बल तैनात कर सकती थी। **इस पुलिस बल का सम्पूर्ण खर्चा उन नागरिकों से वसूल किया जाता था जो घोषित किए गए अशांत या खतरनाक क्षेत्र में रहते थे।** जिला मजिस्ट्रेट यह निर्धारित करता था कि **निवासियों से कितनी राशि वसूल की जानी है।**

सन् 1895 में इस कानून में नए प्रावधान किए गए। धारा-15अ की उपधारा-5 यह प्रावधान करती थी कि अशांत या खतरनाक घोषित क्षेत्रों के निवासियों को दुर्व्यवहार से पहुंची चोट की क्षतिपूर्ति राशि दी जाएगी। लेकिन ऐसी क्षतिपूर्ति राशि के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में मुकदमा नहीं किया जा सकता था।

इसी प्रकार यह कानून **विशेष पुलिस अधिकारियों** की नियुक्ति का भी प्रावधान करता था। यदि किसी क्षेत्र में निरीक्षक या उससे उच्च स्तर के अधिकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष यह प्रार्थना करे कि उस क्षेत्र में गैर कानूनी सभा हो रही है, दंगे या अशांति का वातावरण है तो मजिस्ट्रेट आम नागरिकों में से कुछ को विशेष पुलिस अधिकारी के रूप में नियुक्ति कर सकते थे। इन विशेष पुलिस अधिकारियों को पुलिस की समस्त शक्तियां प्राप्त होती थीं। किसी नागरिक को यदि विशेष पुलिस अधिकारी नियुक्त किया जाता था तो वह इस कार्य को मना नहीं कर सकता था। मना करने पर आर्थिक दंड की व्यवस्था की गई थी।

अर्थ, विशेषताएं एवं कारण

पुलिस सुधारों से तात्पर्य पुलिस तंत्र की संरचना, कार्यप्रणाली एवं व्यवहार में सुनियोजित पद्धतियों से ऐसे परिवर्तन लाने से है जिनसे पुलिस की छवि, कार्यकुशलता एवं प्रभावशीलता में वांछित सुधार हो सके। **किरण बेदी** के शब्दों में "पुलिस सुधार से मेरा तात्पर्य सत्य को वास्तविक रूप में बोलने, लिखने, दर्ज करने और प्रस्तुत करने से है।"

पुलिस सुधारों को अन्य प्रशासनिक सुधारों की भांति **दो वर्गों** में विभक्त कर विश्लेषित किया जा सकता है–

1. **संरचनात्मक या प्रक्रियात्मक सुधार—**इस श्रेणी में वे सुधार आते हैं जो पुलिस विभाग तथा इसकी इकाइयों के ढांचे, कार्यक्षमता, कार्यप्रणाली तथा संगठन की अन्य प्रक्रियाओं से संबंधित होते हैं।
2. **व्यवहारात्मक सुधार—**इस वर्ग में उन सुधारों को सम्मिलित किया जाता है जो पुलिस के व्यवहार (आचरण), मनोबल, मनोवृत्ति, जनसंपर्क, संवदेनशीलता तथा जवाबदेयता से संबंधित होते हैं।

पूर्व में संरचनात्मक सुधारों पर अधिक ध्यान दिया जाता रहा है किन्तु विगत दो दशकों से व्यवहारात्मक पक्ष को महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है। सूचना के अधिकार, नागरिक अधिकार पत्र, सुशासन, ई. शासन तथा पुलिस-पब्लिक इण्टरफेस इसी दिशा में हो रहे सामयिक प्रयास

हैं। **गैरलिक ई. लेटिन ने प्रशासनिक सुधारों** को चार रूपों, यथा—राजनीतिक क्रांति के माध्यम से आरोपित सुधारों, संगठनात्मक कठोरता को बदलने हेतु होने वाले सुधारों, कानूनी पद्धति से होने वाले सुधारों तथा अभिवृत्ति में परिवर्तन के द्वारा होने वाले सुधारों में वर्णित किया है। पुलिस सुधार भी इन चार रूपों में द्रष्टव्य हो सकते हैं। वस्तुतः पुलिस सुधार इस **लोकतांत्रिक पुलिसिंग** की स्थापना करना चाहते हैं जो लोकतंत्र के मूल्यों एवं मापदंडों पर टिकी हो तथा मानवीय संवदेनाओं से भरपूर हो।

विशेषताएं

पुलिस सुधारों (विशेषतः भारत में) की निम्नांकित विशेषताएं कही जा सकती हैं—

1. चूंकि पुलिस एवं इसकी कार्यप्रणाली शासन तंत्र से प्रत्यक्षतः जुड़ी है अतः पुलिस सुधारों का सीधा संबंध राज्य द्वारा प्रेरित, अभिकल्पित तथा क्रियान्वित होने वाले तत्संबंधी प्रयासों से है।
2. पुलिस सुधार समग्र लोक प्रशासन के अंतर्गत होने वाले प्रशासनिक सुधारों का एक भाग हैं।
3. ये मुख्यतः पुलिस की कार्यकुशलता, प्रभावशीलता, व्यवहार एवं छवि में परिवर्तन लाने पर केंद्रित होते हैं।
4. पुलिस सुधारों को प्रायः प्रवर्तित कानूनों एवं प्रक्रियाओं में परिवर्तन लाकर अथवा विभाग की संरचना में परिवर्तन में लाकर क्रियान्वित किया जाता रहा है।
5. पुलिस आधुनिकीकरण अर्थात् नयी तकनीक, नए हथियारों तथा नयी विधियों का प्रयोग इत्यादि एवं नवाचार पुलिस सुधार के समसामयिक प्रयास हैं।
6. पुलिस सुधार प्रत्यक्षतः न्यायिक सुधारों, एवं राजनीतिक सुधारों से संलग्न हैं।
7. पुलिस सुधार सामान्य प्रशासनिक सुधारों की तुलना में अधिक जटिल एवं उलझे हुए होते हैं क्योंकि अपराधों पर नियंत्रण, तथ्यान्वेषण तथा मानवाधिकारों की रक्षा परस्पर विरोधाभास उत्पन्न करते हैं।

कारण एवं महत्त्व

भारत में पुलिस सुधारों के मूल में निहित कारणों तथा महत्त्व को निम्नांकित बिंदुओं के माध्यम से संक्षिप्त में प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. शिक्षा, सजनचेतना के कारण बढ़ा पुलिस पर दबाव,
2. स्वतंत्रता के पश्चात् लोकतांत्रिक मूल्यों, विकेंद्रीकरण तथा स्वायत्तता संबंधी अवधारणाओं का प्रसार,
3. वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों का प्रचार-प्रसार,
4. आर्थिक उदारीकरण के परिणामस्वरूप विकसित हुई नव प्रवृत्तियों, यथा—सुशासन, सूचना का अधिकार, नागरिक अधिकार पत्र, पुलिस-जनता अंतरक्रिया तथा ई. गवर्नेंस से उत्पन्न परिस्थितियां,
5. स्वतंत्र प्रेस एवं मीडिया की खोजी प्रवृत्ति एवं भारत में उन्हें प्राप्त भरपूर स्वतंत्रता,
6. परम्परागत रूप से सामाजिक आधार पिछड़े वर्गों एवं जातियों का उत्थान,
7. स्वैच्छिक संस्थाओं, विभिन्न दबाव समूहों एवं हित समूहों का निर्माण एवं उनकी प्रभावी भूमिका;
8. न्यायिक सक्रियता;
9. संसदीय लोकतंत्र में प्रवर्तित गठबंधन सरकारें तथा उनके द्वारा निर्मित साझा कार्यक्रम;
10. महिला सशक्तिकरण,
11. लोक कल्याणकारी राज्य के क्रम में निर्मित 'राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्व' तथा तत्संबबगधी कल्याणकारी कार्यक्रम;
12. अन्तराष्ट्रीय दबाव एवं आर्थिक युग की बाध्यताएं; संचार
13. एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई आशातीत प्रगति; तथा
14. आतंकवाद, नक्सलवाद एवं साम्प्रदायिक दंगों के विरुद्ध उठे स्वर तथा प्रतिक्रियाएं।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित कारकों ने भारतीय पुलिस को समसामयिक सुधारों हेतु विवश किया है। जहां तक **पुलिस सुधारों के महत्त्व का प्रश्न** है, यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि एक लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी शासन व्यवस्था का स्वप्न उत्तरदायी एवं स्वच्छ पुलिस बिना सम्भव नहीं है। कानून एवं व्यवस्था के संधारण के साथ-साथ आम व्यक्ति का व्यवस्था पर विश्वास भी पुलिस के कृत्यों से प्रभावित है। यद्यपि भारत जैसे जटिल एवं बहु सांस्कृतिक समाज में अभी 'रामराज्य' की स्थापना का प्रश्न 'कोरा आदर्शवाद' माना जाएगा तथापि प्रत्येक नागरिक यह अवश्य चाहता है कि पुलिस अपने कार्य ईमानदारी, निष्पक्षता एवं पारदर्शितापूर्वक करे। वास्तविकता यह है कि वैश्विक गांव की लोकप्रिय होती अवधारणा तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन से विकसित हो रही एक नयी बाजार संस्कृति, कुशल एवं विश्वसनीय पुलिस की अधिक मांग करती है।

भारत में पुलिस सुधारों के रूप में निम्नांकित प्रयास हुए हैं—

1. पुलिस एवं कारागार विषयक राष्ट्रीय एवं प्रांतीय आयोगों एवं समितियों की स्थापना एवं उनकी अनुशंसाओं पर शिथिल कार्रवाई
2. नये पुलिस कानून का निर्माण एवं क्रियान्वयन।
3. पुलिस आधुनिकीकरण।
4. पुलिस-जनता अंतरसंबंधों का विकास।
5. कारागार सुधार।
6. महिला पुलिस विकास।
7. पुलिस आयुक्त प्रणाली।

पुलिस विषयक आयोग एवं समितियां

पुलिस, कारागार, आंतरिक सुरक्षा एवं समविषयक आपराधिक न्याय प्रक्रिया सुधार पर गठित प्रमुख आयोग एवं समितियां इस प्रकार हैं—

पुलिस विषयक राष्ट्रीय आयोग एवं समितियां

1. कारागार सुधार पर	पकवासा समिति (1949)
2. पुलिस प्रशिक्षण केंद्र उपयुक्तता जांच हेतु	एम.एल. ग्रोवर समिति (1956)
3. पुलिस प्रशिक्षण कालेज (केंद्र) निर्धारण हेतु	कोहली समिति (1966)
4. पुलिस स्टेशनों पर सुविधा विस्तार पर	सी.बी. पटेल पैनल (1967)
5. पुलिस प्रशिक्षण सुधार हेतु	गोरे समिति (1974)
6. राष्ट्रीय पुलिस आयोग	धर्म वीर आयोग (1978-81)
7. कारागार सुधारों पर	ए.एन. मुल्ला समिति (1980-83)
8. महिला कैदियों की स्थिति सुधार पर	न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर समिति (1987-88)
9. पुलिस तंत्र तथा कल्याण हेतु	त्रिखा समिति (1994-2000)
10. पुलिस को मानवीय स्वरूप देते हुए	जे.एफ. रिबैरो समिति (1998-99)
11. पुलिस सुधार हेतु	के. पद्मनाभैया समिति (2000)
12. आपराधिक न्याय प्रक्रिया में सुधार पर	न्यायमूर्ति वी.एस. मल्लिमथ समिति (2002-03)
13. नये पुलिस कानून हेतु	सोली सोराबजी समिति (2005-06)
14. आपराधिक न्याय प्रणाली पर राष्ट्रीय नीति हेतु	माधव मेनन समिति (2006-07)
15. नक्सलवाद प्रसार कारणों की समीक्षा हेतु	डी. बंद्योपाध्याय कार्यदल (2006)
16. राष्ट्रीय सुरक्षा तथा केन्द्रीय पुलिस कार्मिक कल्याण पर	शिवराज पाटिल समिति (2007)
17. कारागार सुधारों एवं सुधार प्रशासन पर राष्ट्रीय नीति हेतु	डा. किरण बेदी समिति (2005-08)

अन्य—द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (वीरप्पा मोइली) की लोक व्यवस्था पर पांचवीं रिपोर्ट (जून, 2007), संघर्ष समाधान हेतु क्षमता निर्माण पर सातवीं रिपोर्ट (फरवरी, 2008) तथा आतंकवाद से मुकाबला—न्यायसंगत ढंग से बचाव पर आठवीं रिपोर्ट (जून, 2008)

पुलिस सुधार हेतु राज्य स्तर पर भी बहुत-सी समितियां या आयोग गठित होते रहे हैं जिनकी अनुशंसाएं

संबंधित राज्य पुलिस तंत्र में सुधार हेतु निर्णायक रही हैं। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

1. असम सिविल पुलिस समिति (1929)
2. केरल पुलिस पुनर्गठन समिति (1959)
3. पश्चिम बंगाल पुलिस आयोग (1960-61)
4. पंजाब पुलिस आयोग (1961-62)
5. दिल्ली पुलिस आयोग (1966-68)
6. तमिलनाडु पुलिस आयोग (1971)

भारत में आजादी के पश्चात् भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों को समुचित प्रशिक्षण देने हेतु बनाई गई अकादमी माउण्ट आबू (राजस्थान) में स्थित थी। सन् 1956 में **गठित ग्रोवर समिति** ने पाया कि माउण्ट आबू की परिस्थितियां पुलिस प्रशिक्षण के अनुकूल नहीं हैं अतः समिति ने इसे स्थानान्तरित करने की सिफारिश की तथा बीस साल बाद आपातकाल में यह अकादमी हैदराबाद स्थानान्तरित हुई जिसे आज सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी कहा जाता है। **सन् 1966 में बनी कोहली समिति** की अनुशंसाओं पर पुलिस प्रशिक्षण प्रणालियों में सुधार हुए तथा राज्यों की पुलिस अकादमियों को सुदृढ़ बनाया गया। कोहली समिति की सिफारिश पर ही राष्ट्रीय पुलिस अकादमी का नया नामकरण हुआ था। पुलिस थानों में सुविधा प्रसार हेतु गठित **सी.बी. पटेल पैनल** (1967) की अनुशंसा पर केन्द्र द्वारा राज्यों के पुलिस तंत्र विशेषतः वायरलैस एवं वाहन सुविधा को सुदृढ़ किया गया। **सन् 1974 में गठित गोरे समिति** ने भारतीय पुलिस सेवा के प्रशिक्षण का गहन अध्ययन किया तथा सुझाव दिया था कि प्रशिक्षण के दौरान ही फील्ड में नियुक्ति देकर इसे 'सैण्डविच प्रशिक्षण' का रूप दे दिया जाए। यह सुझाव सन् 1986 में स्वीकार किया गया।

राष्ट्रीय पुलिस आयोग

सन् 1975-76 के आपातकाल के पश्चात् सत्ता में आयी जनता पार्टी सरकार ने 15 नवम्बर, 1977 को एक राष्ट्रीय पुलिस आयोग का गठन किया जिसे देश की परिवर्तित सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में पुलिस को कानून प्रवर्तन अभिकरण एवं संविधान में वर्णित नागरिक अधिकारों की रक्षा करने वाली संस्था के रूप में भूमिका एवं निष्पादन के तौर-तरीकों पर परीक्षण करने का दायित्त्व सौंपा गया था। इस आयोग की संरचना इस प्रकार थी—

1. श्री धर्म वीर (पूर्व राज्यपाल) — अध्यक्ष
2. न्यायमूर्ति एन.के. रेड्डी (पूर्व न्यायाधीश, मद्रास उच्च न्यायालय) — सदस्य
3. श्री के.एफ. रुस्तमजी (पूर्व पुलिस महानिरीक्षक एवं गृह मंत्रालय के पूर्व विशिष्ट सचिव, मध्यप्रदेश)— - सदस्य
4. श्री एन.एस. सक्सेना (पूर्व पुलिस महानिरीक्षक उत्तर प्रदेश, महानिदेशक सी.आर.पी.एफ. एवं तत्कालीन सदस्य संघ लोक सेवा आयोग) — सदस्य
5. प्रो. एम.एस. गोरे (टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान, बम्बई) — सदस्य
6. श्री सी.वी. नरसिम्हन (तत्कालीन निदेशक सी.बी.आई.) — पूर्णकालिक सदस्य-सचिव

आयोग ने अप्रैल, 1978 से कार्य करना शुरू किया तथा 22 दिसम्बर, 1978 को इसकी प्रथम बैठक हो पाई।

आयोग ने फरवरी, 1979 से मई, 1981 के **मध्य कुल 8 रिपोर्ट** भारत सरकार को प्रस्तुत की। आयोग की प्रथम रिपोर्ट जनता पार्टी सरकार द्वारा तत्काल जारी की गई तथा 6 जून, 1979 को मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में इस पर चर्चा भी हुई। इसी वर्ष देश भर में पुलिसकर्मियों के आंदोलन भी हुए। इनकी कई मांगों में एक अर्दली व्यवस्था की समाप्ति थी। मुख्यमंत्री सम्मेलन में इस पर सहमति हो चुकी थी। पुलिसकर्मियों हेतु आवास भी बड़ी मांग थी। सभी राज्यों के वायदे के बावजूद मात्र गुजरात सन् 1983 तक इस दिशा में आगे बढ़ पाया था। जनवरी, 1980 में पुनः कांग्रेस सरकार सत्ता में आने से आयोग ने अपनी

दूसरी से आठवीं रिपोर्ट नयी सरकार को प्रस्तुत की जिन्हें **मार्च, 1983 में सार्वजनिक** कर राज्यों को भेजा गया। आयोग ने अपने विशद् अध्ययन राज्यवार कार्यकारी दल तथा महत्त्वपूर्ण विषयों पर कई समितियां गठित की थी। आयोग के प्रतिवेदनों की विषयवस्तु इस प्रकार थी—

विषयवस्तु

रिपोर्ट संख्या

प्रथम कांस्टेबुलरी, वेतन संरचना, आवास, आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई, अर्दली व्यवस्था, पुलिस कार्मिकों की शिकायतों का निवारण तंत्र, भर्ती, प्रशिक्षण एवं कैरियर नियोजन, पुलिस के विरुद्ध शिकायतों की प्रणाली, वित्तीय उलझनें।

द्वितीय पुलिस-परिवारों के कल्याण उपाय, पुलिस की भूमिका, दायित्व, शक्तियां तथा कर्तव्य, पुलिस पर राजनीतिक या कार्यपालिका का दबाव तथा पुलिस का दुरुपयोग एवं इसके उपाय, ग्राम न्यायालय, अपराध अभिलेख एवं सांख्यिकी का संधारण।

तृतीय पुलिस तथा समाज के कमजोर वर्ग, ग्राम पुलिस, लोक व्यवस्था या लोक शांति भंग करने वाले प्रकरणों से निपटने हेतु विशेष कानून, पुलिस में भ्रष्टाचार, आर्थिक अपराध, कानून प्रवर्तन का आधुनिकीकरण, पुलिस में लेखन कार्य।

चतुर्थ अन्वेषण, कोर्ट ट्रायल, अभियोजन अभिकरण, औद्योगिक विवाद, कृषि समस्याएं, सामाजिक विधान, प्रतिबंध।

पंचम कांस्टेबलों एवं उप निरीक्षकों की भर्ती, पुलिस प्रशिक्षण रिपोर्ट, 1973 के विशेष संदर्भ में कांस्ट्रेबलों, उप निरीक्षकों तथा उपाधीक्षकों का प्रशिक्षण, डकैत, हथियार कानून, जिला पुलिस एवं कार्यकारी दंडनायिकी, पुलिस अधिकारियों हेतु आचार संहिता, पुलिस-जनता संबंध, महिला पुलिस।

षष्ठम् पुलिस नेतृत्व—भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों का प्रशिक्षण, पुलिस एवं विद्यार्थी, साम्प्रदायिक दंगे, नगरीय पुलिस।

सप्तम् पुलिस का संगठन एवं संरचना, राज्य सशक्त पुलिस एवं जिला सशस्त्र आरक्षित, पुलिस अधिकारियों को वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन, यातायात विनियमन, पुलिस विभाग में मंत्रालयिक कार्मिक एवं प्रशासनिक कार्य, पुलिस के सहायक-होमगार्ड्स, पुलिस कर्मिकों हेतु कार्य निष्पादन मूल्यांकन, अनुशासनात्मक नियंत्रण, नियोजन, मूल्यांकन तथा समन्वय में केंद्र की भूमिका, उत्तरी-पूर्वी राज्यों में पुलिस।

अष्टम् पुलिस निष्पादन की जवाबदेयता, भविष्योन्मुखी सुझाव, पुलिस कानून, उपसंहार।

उपर्युक्त वर्णित सारणी से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने भारतीय पुलिस के कार्यकरण से संबंधित प्रायः सभी पक्षों को विश्लेषित किया था। आयोग की कतिपय प्रमुख अनुशंसाएं इस प्रकार थीं—

1. पुलिस के अन्वेषण कार्य में किसी भी प्रकार का कार्यकारी (कार्यपालिका) या गैर कार्यकारी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। सरकार केवल बचावात्मक एवं सेवा उन्मुख कार्यों के संदर्भ में स्थूल नीति ही बनाए। पुलिस को उसके वास्तविक कार्य स्थल पर बाहरी हस्तक्षेप से मुक्त होना चाहिए।
2. प्रत्येक राज्य में एक सांविधिक राज्य सुरक्षा आयोग होना चाहिए जो पुलिस के कार्य निष्पादन तथा पुलिस के सेवा उन्मुख कार्यों हेतु स्थूल नीति-निर्देश तैयार करे, प्रतिवर्ष पुलिस के कार्य का मूल्यांकन करे, पुलिस अधिकारियों द्वारा उन प्रस्तुत प्रकरणों की जांच करे जो उन्हें मिले अवैधानिक आदेशों तथा पदोन्नति से संबंधित हों और राज्य पुलिस बल कार्यकरण की सामान्य समीक्षा करे।
3. पुलिस प्रमुख का कार्यकाल निश्चित होना चाहिए। यह चार वर्ष या सेवानिवृत्ति तक हो सकता है (जो भी पहले

हो)। यदि समय पूर्व उसे हटाया जाए तो राज्य सुरक्षा आयोग से अनुमोदन करवाया जाए।

4. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष की अध्यक्षता में बनी एक समिति तीन आई.पी.एस. अधिकारियों के नाम का पैनल राज्य पुलिस प्रमुख हेतु सुझाए।

5. **भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 को समाप्त** कर नया कानून बनाया जाए ताकि न केवल पुलिस पर अधीक्षण की वर्तमान प्रणाली समाप्त हो बल्कि देश को विधि का शासन एवं निष्पक्ष पुलिस मिले।

6. पुलिस हिरासत में महिला से बलात्कार, पुलिस हिरासत में किसी की मृत्यु या गम्भीर चोट, पुलिस फायरिंग में दो या अधिक मृत्यु के मामलों में न्यायिक जांच करानी चाहिए। इस हेतु अतिरिक्त सैशन न्यायाधीश की अध्यक्षता में स्वतंत्र जिला जांच प्राधिकरण होनी चाहिए।

7. पुलिस के विरुद्ध शिकायतों तथा जिला जांच प्राधिकरण के कार्य को सुचारु बनाने हेतु राज्य स्तर पर पुलिस शिकायत बोर्ड होना चाहिए।

8. जब तक आपराधिक न्याय व्यवस्था में सुधार नहीं होगा तब तक पुलिस प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर सकेगी अतः विधि आयोग को विस्तारित करते हुए देश में एक सांविधिक आपराधिक न्याय आयोग गठित किया जाना चाहिए। राज्यों में भी ऐसी व्यवस्था की जाए।

9. पुलिस का मुख्य कार्य कानूनों का प्रवर्तन तथा निष्पक्ष सेवा देना है अतः वह बिना सरकारी दबाव के जन सेवा करे। ऐसे में प्रशिक्षित तथा उपकरणों एवं हथियारों से युक्त पुलिस होनी चाहिए।

10. पुलिस कार्यों में राज्य सरकार का या राजनीतिज्ञ दबाव नहीं होना चाहिए

11. नागरिक अधिकारों एवं कमजोर वर्गों के विरुद्ध अत्याचारों के मामले प्रबोधन (निगरानी) हेतु राज्य पुलिस विभाग में विशेष अन्वेषण प्रकोष्ठ होना चाहिए। कमजोर वर्गों की पुलिस तक पहुंच हो सके इस हेतु कानूनों में संशोधन किया जाना चाहिए।

12. भूमिहीन निर्धनों को भूमि देने हेतु एक व्यापक कानून होना चाहिए। ऐसी भूमि के हस्तानान्तरण के समय स्थानीय पुलिस अधिकारी उपस्थित रहें।

13. पुलिस अधीक्षकों का पदस्थापन राज्य पुलिस प्रमुख तथा पुलिस थानों के कार्मिकों का जिला पुलिस अधीक्षक करें।

14. गिरफ्तारी के संबंध में एक कठोर दिशा-निर्देशिका तैयार होनी चाहिए ताकि निर्दोष व्यक्ति अनावश्यक रूप से पुलिस द्वारा पीड़ित न हों। इस हेतु संज्ञेय एवं असंज्ञेय अपराधों की व्याख्या एवं गैर जमानती प्रकरणों में अनिवार्य गिरफ्तारी पर पुनर्विचार होना चाहिए। गिरफ्तारी की सूचना व्यक्ति के निकटस्थों को शीघ्र देनी चाहिए।

15. हथकड़ी लगाने तथा इसका डर दिखाने की प्रवृत्ति को रोकने हेतु व्यापक संशोधन होने चाहिएं।

16. पुलिस थानों में दैनन्दिन कार्य संचालन हेतु पर्याप्त पेशगी राशि होनी चाहिए।

17. प्रथम सूचना रिपोर्ट हर हाल में लिखी जानी चाहिए। थाने के क्षेत्राधिकार का मामला न होने पर भी प्रकरण प्रथमतः जांच हेतु लिया जाना चाहिए।

18. पुलिस द्वारा गवाहों से बयान लेने के ढर्रे के स्थान पर अन्वेषण अधिकारी द्वारा स्वयं की जांच विस्तृत रूप से लिखी जानी चाहिए।

19. खोई या चोरी हुई वस्तुओं की पुलिस द्वारा प्राप्ति के पश्चात् उन्हें अदालत में जमा कराने के बजाय एक बॉण्ड भरवा कर तत्काल वास्तविक हकदार व्यक्ति को दे देनी चाहिए। अदालत या थाने में रखने से चीजें खराब होती हैं।

20. थर्ड डिग्री प्रणालियों पर रोक लगाई जाए अतः आकस्मिक निरीक्षण, प्रशिक्षण, न्यायिक जांच तथा पूछताछ इत्यादि का सहारा लिया जाए।

21. विभिन्न श्रेणी की अदालतों का उच्च श्रेणी के न्यायाधीशों द्वारा निरीक्षण होना चाहिए।

22. गवाहों को अदालतों द्वारा मिलने वाला भत्ता वास्तविक

दरों पर तथा सरल प्रक्रिया से मिलना चाहिए।

23. **पुलिस में भर्ती केवल दो स्तरों पर हो**—कांस्टेबल तथा आई.पी.एस.। अन्य स्तर की भर्तियां चरणबद्ध तरीके से हटाई जाएं। रक्षा मंत्रालय के सहयोग से पुलिस विभाग भर्ती हेतु **मनोवैज्ञानिक परीक्षण** प्रणाली विकसित करे।

24. प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षणार्थियों के कार्य निष्पादन, अभिवृत्ति तथा व्यवहार का गहन मूल्यांकन हो तथा असंतोषजनक प्रगति वाले व्यक्ति को बाहर कर दिया जाए।

25. जिला मजिस्ट्रेट का प्रत्येक मामले में पुलिस पर नियंत्रण-अधीक्षण नहीं होना चाहिए। केवल कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों में ही वह हस्तक्षेप करे।

26. पुलिस को जनता के प्रति अपने व्यवहार एवं मानसिकता को बदलना चाहिए।

27. अपराध से पीड़ित व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति देने हेतु आपराधिक **हानि क्षतिपूर्ति कानून होना** चाहिए।

28. परिचालन, आसूचना, व्यक्ति की निजता तथा न्यायिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य सभी पुलिस कार्य पारदर्शी होने चाहिए।

29. **महिला पुलिस** को सशक्त एवं प्रभावी बनाया जाए। उन्हें अन्वेषण कार्य में लगाया जाए तथा सहायक उप निरीक्षक एवं उप निरीक्षक स्तर पर महिलाओं की अधिक भर्ती की जाए।

30. पुलिस अधीक्षक, उप महानिरीक्षक तथा महानिरीक्षक पदों पर पदोन्नति से पूर्व **पदोन्नति कोर्स तथा परीक्षा** होनी चाहिए। विफल अभ्यार्थियों को दो और अवसर मिलने चाहिएं।

31. आई.पी.एस. के **दो केन्द्रीय संवर्ग होने चाहिए-**(1) अर्द्ध सैन्य बलों हेतु, (2) आसूचना ब्यूरो, रॉ तथा सी.बी.आई. इत्यादि हेतु।

32. 5 लाख या इससे अधिक जनसंख्या के शहरों में जहां अपराध तेजी से बढ़ रहे हैं, में पुलिस आयुक्त प्रणाली लागू करनी चाहिए।

33. साम्प्रदायिक दंगों पर नियंत्रण एवं जांच हेतु राज्य सी.आई.डी. में **विशेष अन्वेषण स्क्वायड** होना चाहिए।

34. पुलिस में अल्पसंख्यकों या कमजोर वर्गों को **आरक्षण नहीं** देना चाहिए। इससे साम्प्रदायिक आधार विभाजन होता है।

35. कानून-व्यवस्था और अन्वेषण स्टाफ को पृथक्-पृथक् करने के क्रम में आयोग अपनी छठी रिपोर्ट से सहमत था जबकि सातवीं रिपोर्ट में कहा गया कि ऐसा करना संभव नहीं है।

36. ग्रामीण क्षेत्रों में पुलिस थाने का क्षेत्र 150 वर्ग कि.मी. से अधिक न हो तथा शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या को आधार बनाना चाहिए। 60 हजार से अधिक जनसंख्या या 700 से अधिक वार्षिक अपराध आंकड़ा आने पर नया थाना बनना चाहिए।

37. शहरों में भारतीय दंड संहिता के अधीन 900 से अधिक संज्ञेय अपराधों वाले थानों में उपाधीक्षक या सहायक अधीक्षक को थानाधिकारी बनाना चाहिए। ऐसे 300 से ज्यादा वाले प्रकरण वाले थानों में निरीक्षक स्तर का तथा तीसरी श्रेणी के थानों में उप निरीक्षक थानाधिकारी होना चाहिए।

38. एक अन्वेषण अधिकारी वर्ष भर में 50-60 से अधिक केस (भा.दं.सं.) की जांच न करे।

39. पुलिस पदसोपान में सहायक उप निरीक्षक तथा उप निरीक्षक के पद अधिक होने चाहिए ताकि अन्वेषण कार्य भी शीघ्र हों तथा पदोन्नतियां भी बढ़ें।

40. पुलिस का आंतरिक प्रशासनिक, वित्तीय एवं कार्मिक तंत्र पुलिस प्रमुख के अधीन होना चाहिए।

41. राज्य सशस्त्र पुलिस बटालियनों के संगठन, पदसोपान, प्रशिक्षण तथा अनुशासन इत्यादि पर एकरूपता हेतु **केंद्रीय कानून** होना चाहिए।

42. एक केंद्रीय पुलिस समिति की स्थापना की जानी चाहिए ताकि वह राज्य सुरक्षा आयोगों को सुझाव प्रदान कर

सके तथा पुलिस संगठन, सुधार, बजट, अनुदान, आधुनिकीकरण तथा विकास पर परामर्श दे सके।

43. **केंद्रीय पुलिस के अधीन एक अखिल भारतीय पुलिस संस्थान** होना चाहिए।

44. लोक सेवकों के विरुद्ध शिकायतों की जांच के क्रम में पुलिस संबंधित विभाग से अनुमति लेने से सीधे कार्रवाई कर सके, ऐसा कानूनी संशोधन होना चाहिए।

इस आयोग ने **11 अध्यायों तथा 157 धाराओं से युक्त एक नए पुलिस कानून का प्रारूप तैयार कर सरकार को प्रस्तुत किया था।** आयोग ने पुलिस प्रशिक्षण के संदर्भ में गोरे समिति की सिफारिशें ही उपयुक्त मानी थीं। इस आयोग का मुख्य उद्देश्य एवं सिफारिश ब्रिटिशकालीन पुलिस तंत्र को हटा कर एक नए मानवीय चेहरे से युक्त जवाबदेय पुलिस प्रशासन की स्थापना करने की थी किन्तु आयोग की सिफारिशें पर कार्रवाई नहीं हुई।

धर्म वीर ने 19 अप्रैल, 1997 को बम्बई में आयोजित हुई संगोष्ठी में स्वीकारा था-**"यदि सन् 1975 में आपातकाल नहीं लगता तो पुलिस आयोग का गठन भी नहीं होता।"** चूंकि इस आयोग द्वारा कई स्थानों पर शाह आयोग (सन् 1977 में न्यायमूर्ति जे.सी. शाह की अध्यक्षता में बना आपातकाल ज्यादतियों की जांच हेतु आयोग) को उद्धृत किया गया था अतः भारत सरकार के गृह मंत्रालय के पक्ष दिनांक 31 मार्च, 1983 में स्पष्ट कहा गया कि दूसरी रिपोर्ट के ही पैरा 15.24, 15.35 तथा 15.55 शाह आयोग के निष्कर्षों पर आधारित हैं। इसी प्रकार दूसरी रिपोर्ट के ही पैरा 15.2, 15.4, 15.7, 15.18, 15.19 तथा 15.26, तीसरी रिपोर्ट का पैरा 22.3, चौथी रिपोर्ट का पैरा 32.7, छठी रिपोर्ट का पैरा 44.9, सातवीं रिपोर्ट का पैरा 59.10, 59.19 तथा 59.25 और आठवीं रिपोर्ट का पैरा 6.18 भी आपत्तिजनक माने गए। अप्रैल, 1997 में **तत्कालीन गृह मंत्री इन्द्रजीत गुप्त** ने राज्यों के मुख्यमंत्रियों को पत्र लिख कर पुलिस सुधारों हेतु राष्ट्रीय पुलिस आयोग की सिफारिशों पर कार्रवाई करने का आग्रह किया था। प्रत्युत्तर में उन्हें एक भी सूचना या कार्रवाई रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई।

सन् 1994 में बनी त्रिखा समिति को पुलिस ढांचे में सुधार तथा पुलिस कल्याण से संबंधित सिफारिशें देने को कहा गया था। समिति ने 6 वर्ष पश्चात् प्रस्तुत रिपोर्ट में पुलिस प्रशासन में नियमबद्धता अधिनियम बनाकर वैज्ञानिक प्रगति के साथ कदम मिलाने का सुझाव दिया था। इस समिति ने शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में **सामुदायिक पुलिस** (कम्यूनिटी पुलिस) तथा ग्राम रक्षा समितियों के निर्माण के व्यावहारिक सुझाव दिए थे जो कई राज्यों में कम्यूनिटी लायजन ग्रुप (सी.एल.जी.) नामों से क्रियान्वित हो रहे हैं

सन् 1996 में **उच्चतम न्यायालय** में दो पूर्व वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों श्री एन.के सिंह तथा श्री प्रकाश सिंह ने एक याचिका दायर कर राष्ट्रीय पुलिस आयोग की सिफारिशें क्रियान्विति करने की गुहार की थी। माननीय उच्चतम न्यायालय ने राज्यों की छः समीक्षा याचिकाएं खारिज करते हुए 23 अगस्त, 1997 को सरकार को निर्देश दिए थे कि वह राष्ट्रीय पुलिस आयोग, वोहरा समिति तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की सिफारिशों पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समीक्षा कराए। इसी क्रम में सन् 1998 में गठित **रिबैरो समिति** ने राष्ट्रीय पुलिस आयोग द्वारा सुझाए गए 'राज्य सुरक्षा आयोग' को नकारते हुए 'पुलिस कामकाज तथा जवाबदेही आयोग' बनाने, पुलिस महानिदेशक के चयन की प्रणाली को बदलने तथा कांस्टेबल पद समाप्त कर उन्हें पुलिस उप निरीक्षक नाम देने इत्यादि की सिफारिश की थी। ये सिफारिशें भी ठंडे बस्ते में पड़ी रहीं। इस समिति ने अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर पूर्ववर्ती आयोगों या समितियों की अनुशंसाओं को नकार दिया या परिवर्तित किया।

पुलिस तंत्र में सुधार हेतु **सन् 2000 में पूर्व गृह सचिव के. पद्मनाभैया की अध्यक्षता में गठित समिति** ने सुझाया था कि—

1. भारतीय दंड संहिता को चुस्त-दुरुस्त करते हुए अपराधों

का दायरा बढ़ाया जाए तथा अंतराष्ट्रीय स्तर पर, राष्ट्रीय स्तर, अन्तरराज्यीय स्तर पर फैले अपराधों की **संघीय अपराध** नाम से एक नयी श्रेणी बनाई जाए। राष्ट्रीय विधि आयोग नए सिरे में वर्गीकरण कर पुलिस अन्वेषण शक्तियों की पुनरीक्षा करे। संघीय अपराधों की जांच केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो का 'विशेष अपराध संभाग' करे जो कि गृह मंत्रालय के अधीन रहे। केन्द्रीय अन्वेषण सहित सामान्य राज्य पुलिस को अधिक अधिकार दिए जाएं।

ज्ञात रहे कि संज्ञेय अपराधों में बिना वारण्ट गिरफ्तारी हो सकती है अतः लोक सेवकों के द्वारा भ्रष्टाचार जैसे प्रकरणों में पद्मनाभैया समिति पुलिस को अधिक प्रभावी बनाने के पक्ष में थी।

2. समिति ने कांस्टेबल के बजाय उप निरीक्षकों की अधिक भर्ती करने तथा उप निरीक्षक एवं कांस्टेबल अनुपात 1 : 4 तक लाने की अनुशंसा की थी जो कि विभिन्न राज्यों में 1 : 7 से 1 : 15 तक बना हुआ है। कांस्टेबल हेतु सैकण्डरी कक्षा उत्तीर्ण 19 वर्ष से कम आयु के युवक-युवतियों का प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से चयन किया जाए जिन्हें 2 वर्ष के कठोर प्रशिक्षण से गुजरना पड़े तथा उप निरीक्षक हेतु सीनियर सैकण्डरी उत्तीर्ण 21 वर्ष की आयु से कम के युवक-युवतियां लिखित प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से चयनित किए जाएं जिन्हें 3 वर्ष के प्रशिक्षण का सामना करना पड़े। उप निरीक्षक पद पर **50 प्रतिशत आंतरिक पदोन्नति** तथा 50 प्रतिशत बाहरी भर्ती हो। पुलिस में सभी पदोन्नतियों में **अनिवार्य प्रशिक्षण** तथा **पदोन्नति परीक्षा** व्यवस्था लागू की जाए। समिति ने **कांस्टेबल को कौशलयुक्त** कार्मिक बनाने पर बल दिया।
3. देश में **'सामुदायिक पुलिसिंग'** को अपनाया जाए। इस हेतु सरकार नियमावली तैयार करे तथा पुलिस को प्रशिक्षण दे।
4. राज्य उच्च न्यायालय के **मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक पैनल** होना चाहिए जिसमें राज्य का मुख्य सचिव एवं जनता से एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति भी हो। यह पैनल पुलिस महानिदेशक पद हेतु दो नाम सुझाए।
5. उपाधीक्षक एवं इससे ऊपर के पुलिस अधिकारियों के स्थानान्तरण संबंधी निर्णय हेतु पुलिस महानिदेशक तथा उसके द्वारा चयनित तीन व्यक्तियों (पुलिस बल से) का एक **पुलिस संस्थापना** बोर्ड होना चाहिए।
6. सभी पुलिस अधिकारियों का **न्यूनतम पदस्थापन** 2 वर्ष होना चाहिए।
7. पुलिस अधीक्षक एवं इससे ऊपर के अधिकारियों के पदस्थापन तथा स्थानान्तरण मामलों में उल्लंघन सम्बन्धी आरोपों के निस्तारण हेतु एक समिति हो जिसमें मुख्य समिति अध्यक्ष तथा गृह सचिव एवं पुलिस महानिदेशक सदस्य हों।
8. पुलिस में व्याप्त भ्रष्टाचार जो अपराधीकरण को जन्म देता है से मुक्ति पाने हेतु **आचार संहिता को सरल किंतु प्रभावी बनाया जाए** तथा ऐसी प्रक्रियाएं स्थापित हों कि भ्रष्ट अधिकारियों को तुरंत हटाया जा सके।
9. चूंकि पुलिस कार्य में 8 घंटे की ड्यूटी का नियम सम्भव नहीं है अतः पुलिसकर्मियों को अनिवार्यतः साप्ताहिक अवकाश तथा प्रतिवर्ष उपार्जित अवकाश दिया जाए। पुलिसकर्मियों हेतु अवकाश गृह भी बनाए जाएं।
10. कानून-व्यवस्था तथा अन्वेषण कार्य पृथक्-पृथक् किए जाएं। एक अतिरिक्ति पुलिस अधीक्षक इस हेतु उत्तरदायी हो। यह प्रयोग पहले शहरी क्षेत्रों में करके देखा जाए।
11. **भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 एवं 26 समाप्त की जाए** तथा पुलिस अधीक्षक या इसके ऊपर के अधिकारी के समक्ष दिए गए बयान साक्ष्य के रूप में माने जाएं।
12. प्रत्येक पुलिस थाने में **अन्वेषण किट** तथा उपखण्ड स्तर पर **चलित विधि विज्ञान प्रयोगशाला** होनी चाहिए।
13. पुलिस में प्रत्येक स्तर पर **विशेषीकरण** प्रशिक्षण,

मनोबल, नेतृत्व, जन व्यवहार तथा अन्य मानकों का समावेश किया जाए।

14. प्रत्येक जिले में विशेषज्ञ अधिकारियों से युक्त एक **अपराध रोकथाम प्रकोष्ठ** होना चाहिए।

15. **साइबर अपराधों** पर प्रभावी नियंत्रण हेतु क्षमता विकास आवश्यक है। इस हेतु राष्ट्रीय पुलिस अकादमी प्रशिक्षण देने, सी.बी.आई. जांच करने, आई.बी. निगरानी रखने तथा राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो साइबर प्रौद्योगिकी इत्यादि को विकसित करे।

16. राष्ट्रीय स्तर पर **आतंकवाद रोकने हेतु एक समन्वयक** होना चाहिए जो तत्वसंबंधी योजना एवं बजट बनाए।

17. राज्य स्तर पर पुलिस का **एक सांविधिक स्वतंत्र निरीक्षणालय** होना चाहिए जो वार्षिक एवं विषयानुसार पुलिस बल का निरीक्षण कर राज्य सरकार को रिपोर्ट दे ताकि पुलिस बल कुशलतापूर्वक एवं प्रभावशाली ढंग से कार्य करे।

18. जिला मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में **एक गैर सांविधिक जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण** बने जिसमें वरिष्ठ अतिरिक्त सैशन न्यायाधीश, पुलिस अधीक्षक तथा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा मनोनीत एक महत्त्वपूर्ण नागरिक सदस्य हों। यह प्राधिकरण उन शिकायतों की जांच करे जो जनता द्वारा प्रस्तुत हों किन्तु प्रथमतः इनकी जांच पुलिस विभाग कर चुका हो।

19. बलात्कार तथा पुलिस हिरासत में मृत्यु प्रकरणों की **अनिवार्यतः न्यायिक जांच** होनी चाहिए।

20. भारत सरकार एक स्थायी **राष्ट्रीय पुलिस मानक आयोग** की स्थापना करे जो कि पुलिस बलों हेतु सामान्य मापदंड निर्धारित करे तथा यह देखे कि राज्य सरकारें भी ऐसा तंत्र बनाएं एवं मानक लागू करें।

21. पुलिस आधुनिकीकरण तथा उन्नयन हेतु दिया जाने वाला फंड कतिपय निश्चित बिंदुओं, जैसे—राज्यों द्वारा पुलिस कैरियर नियोजन, पारदर्शी भर्ती पद्धति, पदोन्नति एवं स्थानान्तरण नीति तथा प्रशिक्षण के न्यूनतम मानकों के पालन के आधार पर जारी होना चाहिए।

22. सन् 1861 का पुलिस अधिनियम समाप्त कर नया कानून बनाया जाए।

23. राज्य सरकारें पुलिस को पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराएं।

24. **आपराधिक न्याय प्रशासन में व्यापक सुधार** किए जाएं अन्यथा जनता की न्याय पर आस्था न रहेगी।

आपराधिक न्यायिक प्रक्रिया में सुधार हेतु सन् 2000 में गठित न्यायमूर्ति वी.एस. मलिमथ समिति ने जो 158 सिफारिशें सन् 2003 में दी, वे काफी प्रासंगिक तथा क्रांतिकारी प्रकृति की हैं। मलिमथ समिति ने सुझाया है कि झूठ बोलने वाले गवाह को अनिवार्यतः सजा मिले, छोटे अपराधों पर केवल जुर्माना हो, सात साल से कम सजा के मामलों में गिरफ्तारी केवल न्यायालय के आदेश से हो, गवाह को सुरक्षा मिले, संज्ञेय तथा असंज्ञेय अपराध का भेद समाप्त हो, आजीवन कारावास एवं मृत्युदंड के बीच और कोई सजा भी हो, पीड़ित को उचित मुआवजे मिले, न्यायिक प्रक्रिया सरल बने तथा अपराधों की जांच हेतु पृथक् से पुलिस बल स्थापित हो।

आपराधिक न्याय प्रणाली पर राष्ट्रीय नीति का प्रारूप निर्मित करने के संबंध में भारत सरकार द्वारा मई, 2006 में **एन.आर. माधव मेनन की अध्यक्षता में एक समिति** का गठन किया गया था जिसमें राष्ट्रीय पुलिस अकादमी के पूर्व निदेशक एम.डी. रिजवानी तथा गृह मंत्रालय में आन्तरिक सुरक्षा विभाग के पूर्व सचिव अनिल चौधरी को सदस्य बनाया गया था।

इस समिति को देश की न्यायिक व्यवस्था में व्याप्त कमियों को दूर करने के लिए पुलिस जांच, गवाही, आरोप पत्र तथा अन्य न्यायिक प्रक्रियाओं की जटिलताओं में होने वाली देरी को कम करने हेतु सुझाव देने का कार्य सौंपा गया था। एक अगस्त, 2007 को समिति ने अपनी रिपोर्ट गृह मंत्री शिवराज पाटिल को सौंपते हुए निम्नांकित सुझाव किए-

1. एफ.आई.आर. को ऑनलाईन दर्ज करने की व्यवस्था

विकसित की जाए।

2. छोटे अपराधों को आपराधिक प्रक्रिया संहिता के बाहर किया जाए तथा ऐसे मामलों को पुलिस एवं न्यायालय के स्थान पर सामुदायिक स्तर पर 'सेवा' कराने सरीखी सजाओं के प्रावधान को सम्मिलित किया जाए। इससे पुलिस का कार्य बोझ घटेगा वहीं लोगों को अदालतों के चक्कर भी नहीं लगाने पड़ेंगे।

3. अपराधों की प्रकृति को देखते हुए उन्हें अलग-अलग **चार प्रकार की संहिताओं** में विभक्त किया जा सकता है—

(i) **सामाजिक कल्याण अपराध संहिता**—इसमें सामान्य अपराधों जैसे विवाह सम्बन्धी विवाद एवं काम-काज के स्थान पर नियम विरुद्ध कार्य कराने संबंधी अपराध सम्मिलित हों।

(ii) **सुधारात्मक अपराध संहिता**—इसमें कुछ गम्भीर प्रकृति के अपराध जिसमें तीन वर्ष तक की सजा का प्रावधान हो, को सम्मिलित करने का प्रावधान हो।

(iii) **दंड संहिता**—तीन वर्ष से अधिक से लेकर फांसी की सजा वाले अपराध इस श्रेणी में रखे जाएं।

(iv) **आर्थिक अपराध संहिता**—वित्तीय लेन-देन तथा आर्थिक अनियमितताओं से संबंधित अपराध इस श्रेणी में रखे जाएँ।

4. प्रत्येक जिला मुख्यालय पर एक हाइटेक कॉम्पलैक्स होना चाहिए जिसमें पुलिस थाना, कचहरी, हवालात, जेल, जिला न्यायालय तथा अन्य आवश्यक कार्यालय एक ही भवन में हों ताकि समय एवं धन की बचत के साथ-साथ तत्काल न्याय मिल सके। इस समिति ने सुझाया है कि इस बहुमंजिला हाइटेक कॉम्पलैक्स में भूतल पर वीडियो सुविधा से परिपूर्ण पुलिस थाना, प्रथम मंजिल पर हवालात, उप कारागार तथा मजिस्ट्रेट कक्ष, दूसरी मंजिल पर अभियोजन कार्यालय, गवाह कक्ष, अपराध प्रयोगशाला एवं अन्य कानूनी सहायता सेवाएं तथा तीसरी मंजिल पर सत्र न्यायालय एवं चौथी मंजिल पर प्रशासनिक और अन्य आवश्यक कार्यालय बनाए जाएं।

5. राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए गम्भीर अपराधों जैसे आतंकवाद इत्यादि की जांच के लिए पर्याप्त अधिकार प्राप्त एक 'राष्ट्रीय प्राधिकरण' होना चाहिए। साथ ही एक जैसे मामलों में एक जैसी सजा के लिए दिशा-निर्देश बनाए जाने चाहिएं।

6. 'आपराधिक न्याय सांख्यिकी अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो' का गठन होना चाहिए। इसी प्रकार केंद्र एवं राज्य स्तर पर 'आपराधिक न्याय बोर्ड' भी होना चाहिए।

7. आधुनिक दौर के अपराधों से निपटने के लिए नई तकनीक और सुविधाओं से युक्त न्याय प्रणाली विकसित की जानी चाहिए।

8. गवाहों को संरक्षण देने की व्यवस्था के साथ-साथ पीड़ितों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर 'मुआवजा फंड' की व्यवस्था की जानी चाहिए।

नया पुलिस कानून

यद्यपि राष्ट्रीय पुलिस आयोग द्वारा एक नया पुलिस कानून निर्मित किया गया था तथापि उस पर दो दशकों तक केंद्र एवं राज्य सरकारों ने रुचि नहीं ली। भारत में पुलिस सुधार के नाम पर सर्वाधिक चर्चा सन् 1861 के कानून को समाप्त करने के लिए होती रही हैं। इस कानून को समाप्त कर नया पुलिस कानून बनाने के लिए केंद्र सरकार ने सितम्बर, 2005 में पूर्व महान्यायवादी **सोली सोराबजी की अध्यक्षता** (श्री हरमिन्दर राज सिंह संयोजक) में एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया। नए पुलिस कानून या आदर्श पुलिस विधेयक का ड्राफ्ट बनाने वाली इस समिति की संरचना इस प्रकार थी—

1. श्री सोली सोराबजी (भारत के पूर्व महान्यायवादी) — अध्यक्ष
2. डा. एन.सी. सक्सेना, आई.ए.एस. (भारत सरकार के पूर्व सचिव) — सदस्य
3. प्रो. एन.आर. माधव मेनन (राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी, भोपाल के निदेशक) —सदस्य

4. प्रो. रणबीर सिंह (राष्ट्रीय विधि संस्थान, हैदराबाद के निदेशक) — सदस्य
5. श्री अजय राज शर्मा, आई.पी.एस. — सदस्य
6. श्री बी.एन. गौड़ (संयुक्त सचिव, पुलिस) — सदस्य
7. श्री कमल कुमार (सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिसअकादमी, हैदराबाद के निदेशक) — सदस्य
8. श्री एन.सी. जोशी (पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो के महानिदेशक) — सदस्य
9. श्री हरमिन्दर राज सिंह (संयुक्त सचिव, पुलिस आधुनिकीकरण) — संयोजक
10. डा. यू.एन.बी. राव (आई.पी.एस. सेवानिवृत्त) — सचिव

इस समिति ने छः माह में अपना जटिल कार्य पूरा कर नया पुलिस कानून केंद्र सरकार को प्रस्तुत कर दिया जिसमें प्रत्येक गांव में एक गार्ड लगाने, दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों में आयुक्त प्रणाली लागू करने, पुलिसकर्मियों से केवल 8 घण्टे कार्य लेने, साप्ताहिक अवकाश देने, राज्यों में पृथक् से पुलिस अस्पताल खोलने, पुलिस को अत्याधुनिक हथियार एवं तकनीक देने, महानिदेशक, महानिरीक्षक, अधीक्षक तथा थानाधिकारी का कार्यकाल निश्चित करने (कम से कम 2 वर्ष), राज्यों में स्टेट पुलिस बोर्ड बनाने, थानों में बच्चों तथा महिलाओं की पृथक् डेस्क बनाने और जांच कार्य हेतु पृथक् से पुलिस बल गठित करने के सुझाव भी सम्मिलित थे। गृह मंत्रालय का मत था कि पुलिस अधिकारियों का निश्चित कार्यकाल व्यावहारिक रूप से सम्भव नहीं होगा। ज्ञात रहे कि सोराबजी समिति का सुझाव था कि निश्चित कार्यकाल के अन्तर्गत पुलिस अधिकारी केवल दुराचार, अक्षमता या कोर्ट-आदेश के आधार पर ही हटाए जाएं। इस बीच सितम्बर, 2006 में सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः सरकार को निर्देश दिए कि वह पुलिस सुधारों हेतु नया कानून बनाए तथा राष्ट्रीय पुलिस आयोग की सिफारिशें लागू करे।

इस दिशा में गोवा, सिक्किम तथा मिजोरम जैसे छोटे राज्यों ने पहल करते हुए राज्य पुलिस कानून बनाए। बड़े राज्यों में राजस्थान अग्रणी रहा।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों पर राष्ट्रीय पुलिस आयोग की अनुशंसाओं पर क्रियान्वयन शुरू हुआ। इसमें पहल करते हुए राजस्थान विधानसभा में 29 मार्च, 2007 को राज्य पुलिस विधेयक प्रस्तुत हुआ तथा 22 सितम्बर, 2007 को यह विधेयक पारित हो गया। 19 मई, 2008 से नया कानून (राजस्थान पुलिस अधिनियम, 2007) लागू हुआ। इस प्रकार 146 वर्ष पुराने पुलिस अधिनियम, 1861 की विदाई का मार्ग प्रशस्त हुआ। नए अधिनियम में राज्य पुलिस को जवाबदेय रखने हेतु 'राज्य पुलिस आयोग' तथा कांस्टेबलों की भर्ती, पदोन्नति एवं स्थानान्तरण हेतु 'पुलिस संस्थापना बोर्ड' बनाया जाना प्रस्तावित है। यह बोर्ड आला पुलिस अफसरों के विरुद्ध पुलिसकर्मियों की शिकायत भी सुनेगा। दो साल से पहले पुलिस अधिकारी (थाना प्रभारी से लेकर महानिदेशक तक) नहीं हटाए जा सकेंगे। पुलिस को प्रभावी बनाते हुए नाका लगाने की शक्तियां पुलिस अधीक्षक को दी गई हैं। गौहत्या करने वालों, आन्दोलन के समय रास्ता रोकने, सड़क पर कचरा फेंकने, बलवा करने, अश्लील प्रदर्शन करने, कुएं-तालाब, बोरवेल इत्यादि को सुरक्षित नहीं रखने पर पुलिस उत्तरदायी व्यक्ति को बिना वारण्ट गिरफ्तार कर सकेगी। कानून-व्यवस्था के लिए पृथक् यूनिटें बनेंगी।

एफ.आई.आर. दर्ज न हो रही हो तो एसपी को शिकायत की जा सकेगी तथा 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों में कमिश्नर प्रणाली लागू होगी। गांव एवं थाने के मध्य संपर्क हेतु 'ग्राम रक्षक' नियुक्त होंगे तो साथ ही राज्य एवं जिला स्तर पर पुलिस जवाबदेयी समितियां गठित होंगी। अच्छी बात यह भी है कि किसी जलसे में पुलिस लगाने पर भुगतान देना पड़ेगा।

राजस्थान पुलिस अधिनियम, 2007 में प्रावधान है कि **राज्य पुलिस आयोग** की अध्यक्षता गृहमंत्री करेंगे तथा

विधानसभा में प्रतिपक्ष का नेता, मुख्य सचिव, गृह विभाग का प्रभारी सचिव तथा पुलिस महानिदेशक सदस्य होंगे। राज्य सरकार तीन अन्य व्यक्तियों का भी मनोनयन कर सकती है। पुलिस महानिदेशक की अध्यक्षता में **पुलिस संस्थापना बोर्ड** का गठन किया जाएगा जिसमें चार उच्च स्तर के अधिकारी भी होंगे।

इसी प्रकार नए कानून में **पुलिस कल्याण निधि एवं पुलिस कल्याण ब्यूरो** का भी प्रावधान है ताकि पुलिस कार्मिकों की कठिनाइयों का समय पर निराकरण हो सके। थाना स्तर पर **अपराध अन्वेषण इकाई** का भी प्रावधान है। इसी प्रकार जिला स्तर पर संगठित अपराध या साइबर अपराध इत्यादि की जांच हेतु विशेष अपराध अन्वेषण इकाई का भी प्रावधान नए कानून में किया गया है किन्तु इनमें से एक भी इकाई या बोर्ड या आयोग गठित नहीं हो पाए हैं। राज्य में एक भी शहर महानगर घोषित नहीं है अतः 'आयुक्त प्रणाली' भी लागू नहीं हुई है और न ही 'ग्रामरक्षक' नियुक्त हुए हैं।

दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसाएं

कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में गठित दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा अपनी पांचवीं एवं आठवीं रिपोर्ट में पुलिस सुधारों से संबंधित अनुशंसाएं की गई हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

पांचवां प्रतिवेदन : लोक व्यवस्था

पांचवीं रिपोर्ट में लोक व्यवस्था के सामान्य परिचय के साथ प्रवर्तित पुलिस व्यवस्था, पुलिस सुधारों के प्रमुख सिद्धांतों, पुलिस सुधारों की स्थिति, लोक व्यवस्था संधारण, आपराधिक न्याय प्रणाली, संवैधानिक मुद्दे एवं विशेष कानूनों और लोक व्यवस्था के संदर्भ में नागर समाज, मीडिया तथा राजनीतिक दलों की भूमिका की विवेचना की गई है। आयोग द्वारा इस क्रम में निम्नांकित सुझाव दिए गए हैं—

1. कार्यकुशल, प्रभावी, अनुक्रियाशील एवं जवाबदेय पुलिस प्रदान करना राज्य सरकार का दायित्व होगा, यह प्रावधान राज्य पुलिस कानून में किया जाना चाहिए।
2. 'न्याय में बाधा' डालना कानून के अन्तर्गत एक अपराध घोषित किया जाना चाहिए।
3. प्रत्येक राज्य में पुलिस तंत्र से 'अन्वेषण कार्य' पृथक् कर देने चाहिएं तथा 'अपराध अन्वेषण अभिकरण' बनाया जाना चाहिए।
4. अन्वेषण प्रमुख की अध्यक्षता में यह अभिकरण बने तथा **अन्वेषण बोर्ड** के नियंत्रण में कार्य करे। इस बोर्ड में उच्च न्यायालय से सेवानिवृत्त या कार्यरत न्यायाधीश को इसका अध्यक्ष बनाया जाए तथा बोर्ड में प्रसिद्ध वकील, वरिष्ठ नागरिक, सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी, गृह सचिव (पदेन), पुलिस महानिदेशक (पदेन), अपराध अन्वेषण अभिकरण का प्रमुख (पदेन) तथा अभियोजन प्रमुख (पदेन) इसके सदस्य हों।
5. मुख्यमंत्री की अध्यक्षता, विधानसभा अध्यक्ष, गृहमंत्री, विपक्ष का नेता तथा मुख्य न्यायाधीश (राज्य उच्च न्यायालय) की सदस्यता में एक समिति अन्वेषण बोर्ड के अध्यक्ष एवं सदस्यों का चयन करे।
6. अन्वेषण बोर्ड की अनुशंसा पर अन्वेषण प्रमुख की नियुक्ति राज्य सरकार करे।
7. अपराध अन्वेषण अभिकरण का प्रमुख स्वायत्ता प्राप्त हो। सामान्यतः तीन वर्ष का कार्यकाल हो। बोर्ड को नीति-निर्देश राज्य सरकार दे। समय पूर्व पद से हटाते समय 'बोर्ड' से स्वीकृति ली जाए।
8. तीन वर्ष या इससे अधिक दंड वाले अपराध इस अभिकरण के अधीन हों। एफ.आई.आर. दर्ज करने तथा प्राथमिक कार्रवाई 'कानून-व्यवस्था पुलिस' ही करे।
9. कार्यरत पुलिसकर्मियों को विकल्प प्रदान करके अन्वेषण या कानून-व्यवस्था शाखा में जाने को कहा जाए। एक बार शाखा चयन कर लेने के पश्चात् उसी शाखा में बना रहना चाहिए। यह वरिष्ठ अधिकारियों पर भी लागू हो।
10. स्थानीय, जिला तथा राज्य स्तर पर फारेन्सिक, अन्वेषण तथा कानून-व्यवस्था पुलिस में समन्वय हेतु समुचित

तंत्र निर्मित किया जाए।

11. राज्य के गृह मंत्री की अध्यक्षता में **राज्य पुलिस निष्पादन एवं जवाबदेयता आयोग** बनाया जाए जिसमें विपक्ष का नेता, मुख्य सचिव, गृह विभाग का प्रभावी सचिव, पुलिस महानिदेशक (सदस्य-सचिव) तथा पांच निष्पक्ष प्रसिद्ध नागरिक सदस्य हों। (इस हेतु मॉडल पुलिस कानून का प्रारूप देखा जाए)
12. यह आयोग पुलिस हेतु नीति-निर्देश जारी करने, पुलिस महानिदेशक पद हेतु पैनल तैयार करने, पुलिस सेवा निष्पादन के मानक (सूचक) चिन्हित करने तथा पुलिस सेवाओं के संगठनात्मक निष्पादन की समीक्षा का कार्य करे।
13. इस आयोग की अनुशंसानुसार राज्य सरकार कानून-व्यवस्था पुलिस के 'प्रमुख' की नियुक्ति करे। इसे भी सामान्यतः तीन वर्ष का कार्यकाल दिया जाए। राज्य सरकार द्वारा 'प्रमुख' को समय पूर्व पद से हटाते समय उपर्युक्त वर्णित आयोग से स्वीकृति ली जानी चाहिए।
14. मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक राज्य पुलिस संस्थापना समिति होनी चाहिए जिसमें पुलिस महानिदेशक (सदस्य-सचिव), गृह सचिव एवं एक सदस्य राज्य पुलिस निष्पादन एवं जवाबदेयता आयोग द्वारा मनोनीत हो। यह समिति पुलिस महानिरीक्षक तथा इससे ऊपर के अधिकारियों के प्रकरण निस्तारित करे।
15. एक अन्य 'राज्य पुलिस संस्थापना समिति' कानून-व्यवस्था प्रमुख की अध्यक्षता में गठित की जाए जिसमें दो वरिष्ठ पुलिस अधिकारी एवं एक सदस्य राज्य पुलिस निष्पादन एवं जवाबदेयता आयोग से हो। इन सभी सदस्यों का मनोनयन यह आयोग करेगा। यह समिति सभी पुलिस राजपत्रित अधिकारियों (उप महानिरीक्षक तक की रैंक के) के प्रकरण निस्तारित करे।
16. यह सभी समितियां पदस्थापन, स्थानान्तरण, पदोन्नति तथा परिवेदना संबंधी प्रकरण देखेंगी। यद्यपि इन समितियों की अनुशंसाएं सामान्यतः बाध्यकारी होंगी तथापि सक्षम सत्ता हेतु अनुशंसाएं, पुनर्विचार हेतु लौटा सकेगी।
17. इसी प्रकार **जिला पुलिस संस्थापना समिति** (शहर पुलिस समिति) का गठन पुलिस अधीक्षक या आयुक्त की अध्यक्षता में किया जाए जो कि अराजपत्रित कार्मिकों के प्रकरण निस्तारित करे।
18. अराजपत्रित कार्मिकों के अन्तरजिला स्थानान्तरण कार्य राज्य स्तरीय संस्थापना समिति करे या जोन या रैंज स्तर पर समिति बना दी जाए।
19. सामान्यतः सभी अधिकारी तीन वर्ष हेतु नियुक्त किए जाएं किंतु इससे पूर्व स्थानांतरण करना हो तो संबंधित समितियों से परामर्श लिया जाए।
20. अपराध अन्वेषण अभिकरण के कार्मिक मामलों में अन्वेषण बोर्ड पूर्ण नियंत्रण करेगा अतः बोर्ड ही संस्थापना समिति की भांति कार्य करेगा। बोर्ड, जिला स्तरीय समितियां (अराजपत्रित कार्मिकों हेतु) भी बना सकता है।
21. जिला न्यायवादी नामक व्यवस्था शुरू की जाए। एक या कुछ जिलों के अभियोजन का प्रमुख यह जिला न्यायवादी जिला जज के स्तर का हो तथा यह राज्य के **प्रमुख अभियोजक** के अधीन कार्य करेगा। जिला न्यायवादी जिले में अपराध अन्वेषण को निर्देशित करेगा।
22. राज्य का प्रमुख अभियोजक अन्वेषण बोर्ड द्वारा तीन वर्ष हेतु नियुक्त किया जाएगा। इस पद हेतु आपराधिक मामलों के प्रसिद्ध वकील को पात्र माना जाएगा।
23. गृह मंत्रालय एक कार्यबल गठित करे जो विभिन्न विभागों से संबंधित कानून (वन, परिवहन, खाद्य) उन्हें सौंपने तथा उनके क्रियान्वयन के सुझाव दे।
24. महानगरों (10 लाख से अधिक जनसंख्या) में 'नगरीय पुलिस सेवा' शुरू की जाए जो कि नगरीय कानूनों से संबंधित अपराधों पर नियत्रंण करे।
25. दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में यातायात नियंत्रण एवं यातायात पुलिस, स्थानीय शासन को सौंपी जा सकती है।
26. महानगरों में 'महानगरीय पुलिस प्राधिकरण' बनाए जाएं जो कि सामुदायिक पुलिसिंग, पुलिस-जनता

अंतरसंबंध, पुलिस कार्यप्रणाली सुधार तथा वार्षिक कार्य योजना स्वीकृति इत्यादि का कार्य सम्पादित करेंगे।

27. इस प्राधिकरण में राज्य सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य, निर्वाचित पार्षद तथा निष्पक्ष एवं प्रसिद्ध व्यक्ति सम्मिलित होंगे। यह प्राधिकरण परिचालनात्मक कार्यों तथा संस्थानात्मक मुद्दों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। इस व्यवस्था के स्थापित हो जाने पर अन्य कार्य भी दिए जा सकेंगे।

28. प्रत्येक राज्य तुरंत प्रभाव से एक बहुअनुशासनात्मक कार्यबल गठित करे जो कि पुलिस के गैर महत्त्वपूर्ण कार्यों की सूची बना दे ताकि उनकी 'आउटसोर्सिंग' की जा सके। ऐसे में संबंधित अभिकरणों का क्षमता निर्माण किया जाए।

29. प्रवर्तित 'कांस्टेबुलरी' व्यवस्था समाप्त की जाए तथा इसके स्थान पर स्नातक शिक्षा प्राप्त सहायक पुलिस उप निरीक्षक ही भर्ती किए जाएं।

30. सशक्त पुलिस में कांस्टेबल भर्ती प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए।

31. **अर्दली व्यवस्था तत्काल समाप्त** की जाए।

32. पुलिस कार्मिकों के कार्य के घण्टे तार्किक ढंग से निश्चित किए जाएं तथा इनका कठोरता से पालन भी हो।

33. पुलिस कार्मिकों की कार्य दशाओं, बच्चों हेतु अच्छी शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, सेवानिवृत्ति पश्चात् देखभाल तथा आवास समस्या इत्यादि पर समयबद्ध तरीके से कल्याणकारी कदम उठाए जाने चाहिएं।

34. एक प्रसिद्ध नागरिक की अध्यक्षता में **जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण** होना चाहिए जिसमें एक प्रसिद्ध वकील तथा एक सेवानिवृत्त सरकारी कार्मिक सदस्य हों। इनकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा राज्य मानवाधिकार आयोग के परामर्श पर राज्य सरकार द्वारा की जाएगी। राज्य सरकार प्राधिकरण को एक सचिव भी उपलब्ध कराएगी।

35. इस प्राधिकरण के पास पुलिस कार्मिकों (पुलिस उपाधीक्षक रैंक तक) के विरुद्ध जन शिकायतें सुनने, जांच करने तथा अनुशंसा करने हेतु सिविल न्यायालय की शक्तियां होनी चाहिए। अनुशासनात्मक सत्ता सामान्यतः इसकी सिफारिशें स्वीकार करे।

36. राज्य स्तर पर **राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण** गठित होना चाहिए जो कि पुलिस अधीक्षक स्तर से लेकर उच्च तक गम्भीर दुर्व्यवहार की शिकायतों पर जांच करेगा। उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश की अध्यक्षता, राज्य सरकार के प्रतिनिधि, राज्य मानवाधिकार आयोग, राज्य लोकायुक्त तथा राज्य महिला आयोग के प्रतिनिधियों की सदस्यता में यह प्राधिकरण बनेगा। राज्य सरकार इनकी नियुक्ति राज्य मानवाधिकार आयोग (नहीं हो तो लोकायुक्त) के परामर्श पर करेगी। राज्य सरकार का पदाधिकारी इसका सचिव होगा। यह प्राधिकरण जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण की जांच की पुनरीक्षा भी कर सकेगा तथा यह जिला प्राधिकरण पर पर्यवेक्षण भी करेगा।

37. यह प्रावधान भी किया जाना चाहिए कि यदि कोई शिकायत झूठी पायी जाए तो प्राधिकरण के पास शिकायतकर्ता पर समुचित जुर्माना लगाने की शक्ति हो।

38. ये प्राधिकरण सिविल कोर्ट की शक्तियों से युक्त हों तथा यह अनिवार्य कर दिया जाए कि वे एक माह में शिकायत निस्तारण कर देंगे।

39. राज्य में स्वतंत्र पुलिस निरीक्षणात्मक की स्थापना राज्य पुलिस निष्पादन एवं जवाबदेयता आयोग के अधीन की जानी चाहिए ताकि यह निरीक्षण के द्वारा पुलिस थानों की 'निष्पादन लेखा परीक्षा' कर सके।

40. पुलिस मुठभेड़ में होने वाली मृत्यु की जांच 24 घण्टे के भीतर पुलिस निरीक्षणालय करे तथा अपनी रिपोर्ट राज्य पुलिस निष्पादन एवं जवाबदेयता आयोग को प्रस्तुत करे।

41. पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो को सशक्त बनाए

जाने की आवश्यकता है ताकि यह आंकड़ों का विश्लेषण कर पुलिस गुणवत्ता में सुधार हेतु मानक निर्धारित कर सके।

42. अन्वेषण बोर्ड के पर्यवेक्षण में राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय **फोरेन्सिक विज्ञान संगठन** बनाए जाने की आवश्यकता है। पांच वर्ष के भीतर 30-40 लाख की जनसंख्या वाले जिले या जिले के समूह पर एक फोरेन्सिक प्रयोगशाला अवश्यक होनी चाहिए। इस हेतु भारत सरकार पृथक् से राशि निर्धारित करे। इन प्रयोगशालाओं का राष्ट्रीय प्रत्यायन निकाय द्वारा मूल्यांकन होना चाहिए।
43. विभिन्न फोरेन्सिक विज्ञान गवाहियों (प्रमाण) को अच्छी मान्यता दिखाने हेतु दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन होना चाहिए।
44. आसूचना एकत्रण हेतु आम जनता, विभिन्न संगठनों, मुखबिर तथा प्रौद्योगिकी का भरपूर प्रयोग हो।
45. पुलिस की गश्त एवं तैनाती से अधिक उपयोगी यह होगा कि वीडियो कैमरे या सीसीटीवी लगाए जाएं।
46. बीट व्यवस्था को पुनर्जीवित एवं सशक्त करने की आवश्यकता है।
47. मुखबिर की पहचान छुपाना तथा सुरक्षा प्रदान करना और समुचित पुरस्कार देना चाहिए।
48. पुलिस व्यवस्था की भारी विफलता के समय राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण समुचित कदम उठाए तथा चूक के लिए उत्तरदायी अधिकारी को चिन्हित करे।
49. प्रशिक्षण संस्थानों में प्रतिभावान व्यक्तियों को प्रतिनियुक्ति पर आने को प्रोत्साहित करने हेतु अधिक आकर्षक सुविधाएं दी जाएं।
50. प्रशिक्षण प्रमुख की नियुक्ति राज्य पुलिस निष्पादन एवं जवाबदेयता आयोग के परामर्शानुसार की जाए।
51. प्रशिक्षण हेतु निश्चित प्रतिशत में बजट होना चाहिए।
52. पुलिस, जन अभियोजकों तथा दंडनायकों हेतु सामान्य प्रशिक्षण होना चाहिए।
53. प्रशिक्षण का प्रमुख बल 'अभिवृत्ति परिवर्तन' पर होना चाहिए। साथ ही लैंगिक एवं मानवाधिकार मुद्दे भी प्राथमिकता पर रहने चाहिएं।
54. पुलिस में सभी स्तरों पर 33 प्रतिशत महिलाएं होनी चाहिए।
55. अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा कमजोर वर्गों के प्रति पुलिस संवेदनशील होनी चाहिए। इनके पुनर्वास पर भी अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।
56. जहां तक सम्भव हो, धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यक नागरिकों के क्षेत्र के पुलिस थाने में इनकी जनसंख्या के अनुपात में इन्हीं वर्गों के पुलिस कार्मिक रहने चाहिएं।
57. सशस्त्र सेनाओं के प्रमुखों की नियुक्ति हेतु अनुशंसा करने जैसे सीमित कार्य के लिए 'राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग' नहीं होना चाहिए। इस हेतु पृथक् तंत्र होना चाहिए।
58. शस्त्र अधिनियम, 1959 विस्फोटक अधिनियम, 1984 तथा नगरीय कानूनों का कठोरता से पालन होना चाहिए और कानूनों के उल्लंघन पर **शून्य सहिष्णुता रणनीति** अपनानी चाहिए।
59. कार्यपालक दंडनायक एवं पुलिस मैनुअल में समयानुकूल संशोधन होना चाहिए।
60. सम्पत्ति विवादों पर तत्काल तक गम्भीरतापूर्वक कार्रवाई होनी चाहिए। इस क्रम में छः माह में कार्रवाई पूरी हो जानी चाहिए।
61. प्रदर्शन, विरोधस्वरूप मार्च तथा मोर्चा इत्यादि के क्रम में सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के निर्णयों-निर्देशों तथा दंगों के पूर्व अनुभवानुसार विनियमन बनाए जाने चाहिए।
62. ऐसे प्रदर्शनों हेतु स्वीकृति देते समय आयोजक संस्था (संगठन) की पाबंद किया जाना चाहिए तथा उन्हीं से नुकसान की भरपाई करवानी चाहिए।
63. निषेधाज्ञा का कठोरता से पालन होना चाहिए तथा संवेदनशीलता क्षेत्रों की वीडियोग्राफी करवानी चाहिए।

64. दंगें भड़कने पर जिला दंडनायक या पुलिस अधीक्षक द्वारा पुलिस को कानून के अनुसार कार्रवाई करने की पूर्ण छूट देनी चाहिए।
65. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-153(ए) के अंतर्गत अभियोजन हेतु संघ या राज्य सरकार से अनुमति की शर्त हटा देनी चाहिए।
66. दंगों या साम्प्रदायिक अपराधों से संबंधित मुकदमे वापिस नहीं लेने चाहिए।
67. बड़े दंगों या हिंसा की जांच पर बने आयोगों को एक वर्ष में अपनी रिपोर्ट दे देनी चाहिए।
68. संसद के एक कानून के द्वारा 25 हजार की जनसंख्या पर **स्थानीय अदालत** की व्यवस्था होनी चाहिए।
69. एक वर्ष से कम सजा वाले प्रकरण इन अदालतों में आने चाहिए।
70. इन अदालतों में न्यायाधीश की नियुक्ति जिला एवं सत्र न्यायाधीश द्वारा अपने दो वरिष्ठतम साथियों से परामर्श करके की जानी चाहिए। सेवानिवृत्त न्यायाधीश या सेवानिवृत्त राजकीय अधिकारी (समुचित अनुभव सहित) को यह पद दिया जा सकता है।
71. ये अदालतें सरकारी भवनों में स्थापित रहें या चल अदालत भी हो सकती हैं।
72. पुलिस थानों में सीसीटीवी व्यवस्था होनी चाहिए।
73. थानों के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन दर्ज हुए प्रकरणों से नहीं बल्कि सफलतापूर्वक अन्वेषण एवं अभियोजन के आधार पर होना चाहिए।
74. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-161 एवं 162 संशोधित की जाएं तथा गवाह के बयान पर उसके हस्ताक्षर लिए जाएं तथा उन्हें अदालतों में मान्य किया जाए।
75. भारतीय साक्ष्य अधिनियम में संशोधन करके पुलिस के सामने व्यक्ति द्वारा रिश्तेदारों एवं वकील की उपस्थिति श्रव्य या दृश्य उपकरणों में दिए गए बयानों को अदालत में मान्य किया जाना चाहिए। (ऐसा तब ही हो जबकि पुलिस सुधार हो जाएं)
76. आतंकवाद या संगठित अपराधों का अभियुक्त यदि चुप रहने का अधिकार चुनता है तो अदालत चुप्पी का भी अनुमान एवं निष्कर्ष निकाल सकती है, ऐसा प्रावधान कानून में किया जाना चाहिए।
77. झूठी प्रतिज्ञा या मिथ्या शपथ को दंडनीय बनाते हुए न्यूनतम एक वर्ष की सजा दी जानी चाहिए।
78. पीड़ित पक्ष से गरिमापूर्ण व्यवहार हो। उसे उसके प्रकरण की प्रगति बताई जाए तथा पीड़ित पक्ष को सुने बिना आरोपी की जमानत नहीं होनी चाहिए।
79. पुलिस एवं अदालतों का अनावश्यक कार्य-बोझ कम करने हेतु तुच्छ प्रकृति के प्रकरण (जिनमें सुधारात्मक प्रयास अधिक आवश्यक होते हैं, दंडनीय कार्रवाई नहीं) स्थानीय अदालतों को दिए जाने चाहिए।
80. अन्तरराज्यीय या राष्ट्रीय स्तर तक विस्तारित अपराधों की एक नई श्रेणी **संघीय अपराध** होनी चाहिए। इसमें संगठित अपराध, आतंकवाद, राष्ट्रीय सुरक्षा को चुनौती देने वाले कृत्य, हथियारों एवं मानव की तस्करी, राजद्रोह, अन्तरराज्यीय स्तर पर विस्तारित बड़े अपराध, महत्त्वपूर्ण व्यक्ति की हत्या तथा गम्भीर आर्थिक अपराध सम्मिलित हैं। (मकोका, 1999 में दी गई परिभाषा स्वीकार की जा सकती है)
81. इन अपराधों की जांच का अधिकार सी.बी.आई. को होना चाहिए।
82. सशस्त्र सेवाएं (विशेषाधिकार) अधिनियम, 1958 समाप्त किया जाए तथा गैर कानूनी गतिविधियां (बचाव) अधिनियम, 1967 में सशोधन करके नये प्रावधान जोड़े जा सकते हैं।
83. मीडिया को प्रशासन द्वारा वास्तविक तथ्यों से अवगत कराया जाना चाहिए। समुदाय, मीडिया एवं गैर सरकारी संगठन कानून-व्यवस्था में योगदान दे।

आठवां प्रतिवेदन : आतंकवाद से लड़ाई

इस प्रतिवेदन में आयोग ने आतंकवाद के प्रकारों, उद्‌भव तथा परिभाषा के साथ-साथ भारत में आतंकवाद

की स्थिति, वैधानिक ढांचे, आतंकवाद की वित्तीय सहायता के विरुद्ध उपायों, प्रशासनिक एवं संस्थात्मक उपायों एवं नगर समाज, मीडिया और आमजन की भूमिका इत्यादि का विवेचन किया है। प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार दी हैं-

1. आतंकवाद पर नियंत्रण पाने हेतु एक **व्यापक आतंकवादी निरोधी कानून** आवश्यक है। इस हेतु राष्ट्रीय सुरक्षा कानून, 1980 में एक पृथक् अध्याय जोड़ा जा सकता है।
2. आतंकवाद की परिभाषा का दायरा विस्तृत करते हुए इसमें विस्फोटकों, आग्नेयास्त्रों तथा उन विध्वंशकारी वस्तुओं के प्रयोग को सम्मिलित किया है जो सेना द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं और इनसे जान-माल को भारी हानि पहुंचती है। इसके अतिरिक्त भय दिखाने, एकता, सुरक्षा एवं संप्रभुता को चोट पहुं चाने, जनता या लोक प्राधिकारियों की हत्या करने, बंदी बनाने या इस माध्यम से सरकार को प्रभावित करने या इन गतिविधियों हेतु वित्त, सामग्री या सुविधा प्रदान करने या आतंक को प्रश्रय प्रदान करने या उकसाने की गतिविधियां भी आतंकवाद की श्रेणी में मानी हैं।
3. आतंकवादी गतिविधियों से जुड़े अभियुक्तों की जमानत सहजता से न हो ऐसे प्रावधान किए जाएं। इस हेतु एक समीक्षा समिति गठित होनी चाहिए। यह समिति ऐसे सभी प्रयासों की समीक्षा करे।
4. पुलिस के समक्ष अभियुक्त द्वारा स्वीकार किया गया अपराध न्यायालय में भी स्वीकार होना चाहिए। इस हेतु अभियुक्त के बयानों की वीडियोग्राफी करवायी जाए।
5. आतंकवाद प्रकरणों की सुनवाई हेतु पृथक् से विशेष फास्ट ट्रेक न्यायालय होने चाहिए।
6. सी.बी.आई. को आतंकवाद तथा अन्य नयी प्रकृति के प्रकरणों की जाँच हेतु अधिकृत करने हेतु कानून में संशोधन होना चाहिए तथा सी.बी.आई, की एक शाखा आतंकवाद पर संघीय जांच अभिकरण का कार्य करे।
7. रीयल एस्टेट जैसे नए क्षेत्रों और आतंकवाद को वित्तीय सहायता देने वाली गतिविधियों की वित्तीय आसूचना इकाई द्वारा निगरानी की जानी चाहिए। अतः सभी लॉण्ड्रिंग कानून में भी संशोधन किया जाए।
8. आतंकवाद पर नियंत्रण पाने हेतु संबंधितों की सम्पत्ति, कोष, बैंक खाते, जमा तथा नकदी इत्यादि सरकार द्वारा अवरोधित कर देनी चाहिए।
9. एन.सी.ई.आर.टी. को ऐसी पाठ्य सामग्री विकसित करनी चाहिए जो कि शांति, सुरक्षा एवं समुदाय की क्षमतावर्द्धन करे।

कारागार सुधार

भारत में पुलिस प्रशासन के अभिन्न अंग के रूप में विभिन्न श्रेणियों की जेलें, उनके कैदियों की रक्षा एवं कल्याण तथा जेलों का रख-रखाव भी सम्मिलित है। संविधान की सातवीं अनुसूची की दूसरी सूची अर्थात् राज्य **सूची की चौथी प्रविष्टि** में यह वर्णन है कि—"कारागाह, सुधारात्मक, बोर्स्टल संस्थाएं और उसी प्रकार की अन्य संस्थाएं तथा उनमें निरुद्ध व्यक्ति, कारागाहों एवं अन्य संस्थाओं के उपयोग के लिए अन्य राज्यों में इन्तजाम" विषय राज्य सरकारों का दायित्व होगा।" यद्यपि कारागार प्रशासन राज्य सरकारों का दायित्व है तथापि इस दिशा में केंद्र सरकार द्वारा पर्याप्त मात्रा में दिशा-निर्देश जारी होते रहे हैं।

भारत में कारागार व्यवस्था में सुधार ब्रिटिश शासन के दौरान शुरू हो चुके थे। सन् 1836 में गठित हुई 'कारागार जांच समिति' के पश्चात् कैदियों से सड़क निर्माण में मजदूरी लेने का कार्य बंद हुआ। सन् 1838 में लॉर्ड मैकाले के सुझाव पर एक और 'कारागार सुधार समिति' गठित हुई जिसकी सिफारिशों में एक हजार कैदियों वाले केंद्रीय कारागारों की स्थापना, कारागार नियंत्रण हेतु राज्यों में कारागार निरीक्षक की नियुक्ति तथा महिला कैदियों हेतु पृथक् व्यवस्था करना सम्मिलित थी। सन् 1862 में 'द्वितीय कारागार जांच समिति' गठित हुई, जिसने कारागारों में गंदगी तथा अस्वास्थकर दशाओं पर गंभीर चिंता प्रकट

करते हुए तत्काल उपाय करने के सुझाव दिए। समिति ने 15 प्रतिशत कैदियों हेतु एकांत सुविधा तथा कारागार में चिकित्सक की नियुक्ति के भी सुझाव दिए। इसी क्रम में **सन् 1866 से कारागारों में चिकित्सक नियुक्त** होने लगे।

सन् 1894 में बने **कारागार अधिनियम** के पश्चात् देश में कारागारों में व्यवस्था स्थापित होने लगी तथा एकरूपता का निर्माण हुआ। इसी अधिनियम के माध्यम से **कारागारों में कोड़े लगाने की प्रथा समाप्त हुई** तथा दंड का स्वरूप परिवर्तित हुआ। **बोर्स्टल तथा सुधार विद्यालय अधिनियम, 1898** के द्वारा बालक एवं किशोर अपराधियों हेतु पृथक् केंद्र स्थापित होने लगे। **अलैक्जैंडर कार्डयू** की अध्यक्षता में बनी **कारागार सुधार समिति** (1919-20) ने कारागारों में कठोरता के स्थान पर मानवीय दृष्टिकोण से युक्त सुधारों पर बल दिया। **सन् 1919 के भारत सरकार अधिनियम** के द्वारा कारागार प्रांतीय विषय बनाया गया। सन् 1946 में बनी कारागार सुधार समिति ने **कैदियों का वर्गीकरण** करते हुए उन्हें बाल अपराधी, वयस्क अपराधी, महिला अपराधी, अभ्यस्त अपराधी, आकस्मिक अपराधी तथा मनोरोगी अपराधी के रूप में बांटा। इस समिति ने बाल अपराधियों के प्रति अधिक उदारता एवं सतर्कता बरतने पर बल दिया। सन् 1949 में कारागार सुधारों पर बनी **पकवासा समिति** ने कैदियों हेतु मनोचिकित्सक पद्धति अपनाने, अच्छे व्यवहार हेतु Good Time Allowance देने तथा सुधार गृह एवं आदर्श जेल स्थापित करने के सुझाव दिए जो कि सरकार द्वारा स्वीकार कर क्रियान्वित हुए।

कारागार सुधारों पर बनी **न्यायमूर्ति ए.एन. मुल्ला समिति (1980-83)** का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। समिति ने दिल्ली की तिहाड़ जेल तथा आगरा के सम्प्रेक्षण गृहों में बाल अपराधियों को गंभीर अपराधियों के साथ रखने एवं इनके साथ हो रहे दुर्व्यवहार पर गंभीर चिंता प्रकट की। समिति ने कारागारों में भौतिक सुविधाएं बढ़ाने, कैदियों के उत्तरवर्ती पुनर्वास को कारागार व्यवस्था का अभिन्न अंग मानने, मीडिया के माध्यम से स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा कारागारों का निरीक्षण करने, विचाराधीन तथा दोषसिद्ध कैदियों को पृथक्-पृथक् रखने तथा सरकार द्वारा कारागार प्रशासन को पर्याप्त वित्तीय सहायता देने की सिफारिशें कीं। मुल्ला समिति की मुख्य सिफारिश यह थी कि कारागार **प्रशासन को संविधान की समवर्ती सूची** में लाया जाए तथा **कारागार व्यवस्था पर एक राष्ट्रीय नीति** बने। इस समिति की सिफारिशें के पश्चात् **किशोर न्याय अधिनियम**, 1986 पारित किया गया।

वर्ष 1987-88 में महिला कैदियों की स्थिति सुधार हेतु **न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर समिति** बनी जिसने अधिक महिला पुलिसकर्मियों की नियुक्ति करने तथा विशेष बाल अपराध प्रकोष्ठ बनाने के सुझाव दिए। 16 नवम्बर, 1995 को राष्ट्रीय स्तर पर **पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो** के अधीन कारागार एवं सुधारात्मक प्रशासन संभाग की स्थापना की गई जो कि कारागार कार्मिकों के प्रशिक्षण, अनुसंधान एवं संदर्भ मंच का कार्य करता है। सन् 2005 में **डा. किरण बेदी की अध्यक्षता** में 'कारागार सुधारों एवं सुधार प्रशासन पर राष्ट्रीय नीति बनाने हेतु एक समिति' गठित की गई जिसने सन् 2008 में अपनी रिपोर्ट में राष्ट्रीय नीति का प्रारूप, भारत सरकार को प्रस्तुत किया।

भारत में कारागार सुधार के क्रम में सन् 1993 में गठित **राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट** एवं अनुशंसाएँ तथा विभिन्न प्रकरणों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाए गए निर्णयों की महत्ती भूमिका रही है।

भारत में कारागार (सन् 2005 की स्थिति)

श्रेणी	संख्या	क्षमता	
1.	केन्द्रीय कारागार	118	1,16,251
2.	जिला कारागार	285	84,359
3.	उप कारागार	845	37,999
4.	अन्य	64	9,836
	कुल	1,312	2,48,439

महिला पुलिस

सदियों से मानव समाज में प्रायः अधिक जनसंख्या महिलाओं की रही है किंतु पुरुष प्रधान मानसिकता के कारण उन्हें लोक सेवाओं विशेषतः पुलिस एवं सेना जैसे कार्यों में बहुत देरी से सहभागिता का अवसर मिला है। यद्यपि प्राचनी काल में महिलाओं को राजशाही व्यवस्था के अंतर्गत जासूसी करने या विषकन्या के रूप में राजसेवा में लिया जाता था तथापि 'महिला पुलिस' की अवधारणा किंचित् आधुनिक ही मानी जाती है। ऐसा माना जाता है कि सर्वप्रथम सन् 1845 में न्यू यॉर्क शहर में महिलाओं की पुलिस मैटर्न के रूप में नियुक्ति की गई थी किंतु विशुद्ध पुलिस कार्यों के स्थान पर केवल साधारण बचावात्मक कर्तव्य ही सौंपे गए थे। सन् 1893 में शिकागो शहर में महिला पुलिसकर्मियों की नियुक्ति हुई जिन्हें न्यायालयों में जाने एवं महिलाओं तथा बच्चों के संबंध में जासूसी कार्य भी दिए गए। इस दौर में भी महिला पुलिस 'सामाजिक कार्यकर्ता' ही बनी रही किन्तु प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका में महिला पुलिस को अपनी क्षमताएं दिखाने का भरपूर अवसर मिला तथा इसके पश्चात् विश्वभर में 'महिला पुलिस' की उपयोगिता देख भर्ती शुरू हुई।

भारत में सर्वप्रथम सन् 1938 में महिला पुलिस की आवश्यकता तब अनुभव की गई जब कानपुर में कुछ महिला श्रमिक हड़ताल विरोधी पुरुषों को रोकने हेतु एक कारखाने के द्वार पर बैठ गई। उन्हें वहां से हटाने में पुरुषों से युक्त पुलिस को भारी समस्या होने लगी तो ब्रिटिश शासकों द्वारा सन् 1939 में अल्पकालिक रूप से महिला पुलिस गठित की गई, किंतु हड़ताल समाप्ति के पश्चात् 'कानपुर महिला पुलिस बल' भी समाप्त कर दिया गया। इसी वर्ष त्रावणकोर (केरल) में एक महिला हैडकांस्टेबल तथा 12 विशेष महिला कांस्टेबल की नियुक्ति की गई जो भारत में **महिला पुलिस का प्रथम विधिवत् प्रयास माना जाता है।** इसी वर्ष बम्बई में महिला पुलिस की भर्ती शुरू हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार के 'राहत एवं पुनर्वास मंत्रालय' द्वारा महिला शरणार्थियों की समस्या-समाधान हेतु महिला पुलिस की आवश्यकता गंभीरता से अनुभव की गई। सन् 1950 में शोलापुर, कोल्हापुर तथा पुणे में महिला पुलिस भर्ती हुई तथा सन् 1973 से तमिलनाडु पुलिस में महिलाएं प्रवेश पाने लगीं।

27 अक्टूबर, 1973 को केरल के कालीकट शहर में देश का **प्रथम महिला पुलिस थाना** खोला गया। इसके पश्चात् सन् 1987 में मध्यप्रदेश, मार्च, 1989 में राजस्थान (जयपुर) एवं सन् 1990 में जम्मू-कश्मीर में महिला पुलिस थाने शुरू हुए। सन् 1972 में **किरण बेदी भारत की प्रथम आई.पी.एस. महिला अधिकारी** के रूप में पुलिस सेवाओं में आई। राष्ट्रीय पुलिस आयोग द्वारा सन् 1979 में की गई गणना के अनुसार उस समय देश में 12 आई.पी.एस, 5 राज्य पुलिस सेवा तथा 15 निरीक्षकों सहित लगभग 3000 अन्य स्तरों के महिला पुलिस कार्मिक देश में थीं जो उस समय के कुल पुलिस बल का मात्र .4 **प्रतिशत** थी। यह संख्या भी मुख्यतः केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा गुजरात में थी। इसी प्रकार सन् 1979 में राजस्थान में प्रथम महिला आर.पी.एस. का चयन हुआ। सन् 1988 में महिला कैदियों की स्थिति सुधार पर बनी **न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर समिति** की मुख्य अनुशंसा यह थी कि महिला पुलिस कार्मिकों की अधिक नियुक्ति की जाए ताकि जेलों में महिला कैदियों की स्थिति सुधारी जा सके।

सन् 2007 के आंकड़ों के अनुसार देश के कुल पुलिस कार्मिकों में मात्र **3 प्रतिशत महिलाएं** हैं। आरक्षण विषय पर मोइली समिति (2006) तथा द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने पुलिस सेवाओं में महिलाओं को **33 प्रतिशत स्थान आरक्षित** रखने का सुझाव दिया था।

अन्य प्रयास

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की सन् 1993 में स्थापना के पश्चात् पुलिस ज्यादतियों विशेषतः पुलिस हिरासत एवं न्यायिक हिरासत में होने वाली मौतों के विरुद्ध

कठोर कार्रवाई होने लगी। आयोग ने अपने अनेक अध्ययनों एवं जांच के पश्चात् केंद्र एवं राज्य सरकारों को समय-समय पर निर्देश दिए हैं। कारागारों का निरीक्षण, कैदियों की स्थिति, बालश्रम, महिला उत्पीड़न, कमजोर वर्गों पर अत्याचार, बंधुआ मजदूरी, घरेलू कामगार, कार्यस्थल स्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न तथा नक्सलवाद इत्यादि पर आयोग के दिशा-निर्देश बहुत प्रभावी सिद्ध हुए हैं जो मूलतः पुलिस प्रणाली में भी सुधार करवाते रहे हैं।

विगत दो दशकों से भारत में पुलिस के आधुनिकीकरण की एक व्यापक राष्ट्रीय कार्य योजना केंद्र सरकार द्वारा क्रियान्वित की गई है। इस योजना में आधुनिक हथियार, वाहन, संचार व्यवस्था, थानों का कंप्यूटरीकरण, रिकॉर्ड रख-रखाव, पुलिस कार्मिकों को सामाजिक व्यवहार प्रशिक्षण और पुलिस कार्मिकों हेतु आवास निर्माण को प्राथमिकता दी गई है। पुलिस आधुनिकीकरण कार्यक्रम के माध्यम से देश भर की पुलिस सुसज्जित एवं समयानुकूल हुई है। पुलिस थानों को आई.एस.ओ. प्रमाण पत्र मिलने लगे हैं तथा अन्तराष्ट्रीय स्पर्द्धाओं में भारत की सशक्त भागीदारी हो रही है।

देश के कतिपय प्रमुख एवं बड़े शहरों, यथा—दिल्ली, कोलकाता, मुम्बई, बैंगलूर, हैदराबाद, अहमदाबाद, नागपुर तथा पुणे में पुलिस आयुक्त प्रणाली भी लागू है। इस प्रणाली में पुलिस आयुक्त को मजिस्ट्रेट शक्तियां भी मिल जाती हैं।

भारत में पुलिस सुधारों के वर्तमान दौर में एक नया चिंतन **प्राइवेट पुलिस** का भी उभरा है। केंद्र सरकार द्वारा निर्मित 'प्राइवेट सिक्योरिटी एजेंसीज सैण्ट्रल मॉडल रुल्स, 2006' के माध्यम से अब यह प्रावधान किया जा रहा है कि विदेशों की भांति भारत में भी एटीएम, सिनेमाघर, मॉल, आवासीय कॉम्पलैक्स, संस्थानों, बैंकों, होटलों, रेस्त्राओं तथा उद्योगों सहित ज्यादातर बड़े क्षेत्र अब निजी पुलिस को सुरक्षा हेतु दे दिए जाएं। लाइसेंस प्राप्त निजी पुलिस एजेंसी के कार्मिकों को 'कण्ट्रोलिंग अथोरिटी' के माध्यम से प्रशिक्षण की भी व्यवस्था होगी। इस नयी प्रणाली से निश्चित रूप से एक स्मार्ट पुलिस आम जन के सामने आएगी।

पुलिस सुधारों में बाधाएं

भारत में समयानुकूल पुलिस सुधार होने चाहिएं। इस मांग को दशकों से मीडिया, आमजन, बुद्धिजीवी तथा दबाव समूह उठाते रहे हैं किंतु राजनीतिक स्तर पर पुलिस सुधार कभी भी किसी भी राजनीतिक दल की प्राथमिकताओं में सम्मिलित नहीं रहे हैं। कारण एकदम स्पष्ट है। देश की भ्रष्ट, स्वार्थी तथा सत्ता लोलुप राजनीतिक पार्टियों को ऐसी ही व्यवस्था सुहाती है जो भारत में प्रवर्तित है। दूरदर्शन के लोकप्रिय कार्यक्रम **'चर्चा में'** 4 फरवरी, 2007 को पुलिस सुधारों पर गम्भीर बहस हुई। इस कार्यक्रम में भाग लेते हुए उत्तर प्रदेश पुलिस के **पूर्व महानिदेशक प्रकाश सिंह** का कहना था—"भारत में पुलिस सुधार एक कठिन लक्ष्य है क्योंकि जो लोग सत्ता में आते हैं उन्हें अकर्मण्य व्यवस्था ही अनुकूल लगती है। संपूर्ण भर्ती प्रक्रिया भ्रष्ट है। थानों में एफ.आई.आर. दर्ज करें तो अपराधों की संख्या बढ़ी हुई मानी जाती है।"

इसी कार्यक्रम में बोलते हुए दिल्ली पुलिस के **पूर्व कमिश्नर अजय राज शर्मा** का कहना था—"हमने पुलिस को वे सुविधाएं तथा स्थिति प्रदान ही नहीं की है जो उसके कुशल एवं प्रभावी कार्यकरण हेतु आवश्यक है।" कार्यक्रम में उपस्थित आमजन का आक्रोश निठारी काण्ड को लेकर था, वहां बरसों तक अबोध बच्चे हवस एवं हिंसा के शिकार होते रहे। यहां यह प्रश्न भी उठा कि निठारी में कोई राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं था फिर भी क्यों लंबे समय तक पुलिस को इतने बड़े काण्ड की भनक नहीं लगी?

दरअसल पुलिस सुधारों की मुख्य समस्या राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी है। दूसरी समस्या जवाबदेयता के निर्धारण तथा इसके संधारण की है। पुलिस अपने कार्यों के प्रति जवाबदेयता एवं पारदर्शिता नहीं अपनाना चाहती है।

सोली सोराबजी समिति ने पुलिस शिकायतों के विरुद्ध सुनवाई हेतु एक पृथक् से स्वतंत्र निकाय बनाने का सुझाव

दिया था। समस्या यह है कि पुलिस के विरुद्ध शिकायत भी पुलिस में ही करनी पड़ती है। जिस प्रकार मीडिया के विरुद्ध या न्यायालय के विरुद्ध शिकायत करने की प्रभावी व्यवस्था नहीं होने के कारण दोनों अंग प्रायः रौब-दाब रखते हैं, ऐसी ही स्थिति पुलिस तंत्र की बनी हुई है।

भारतीय पुलिस तंत्र की समस्याएं या नकारात्मक पक्ष पर चर्चा करते समय देश की न्यायिक प्रणाली की चर्चा अवश्य होती है क्योंकि पुलिस का लगभग आधा समय अभियोजन संबंधी कार्रवाईयों में व्यतीत होता है और पुलिस की कार्यकुशलता एवं सफलता का मापदंड अपराधियों को मिलने वाली सजा से भी प्रत्यक्षतः संबंधित है। न्यायिक तंत्र की शिथिलता भी पुलिस की बदनामी से जुड़ा पक्ष है। इसी संदर्भ में माधव मेनन समिति की समसामयिक अनुशंसाएं विचारणीय हैं। **पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो** के अनुसार—"भारत में सजा अनुपात **एक लाख मामलों (सभी प्रकार के) में मात्र 30 है** तथा हम 213 देशों की सूची में 26वें नम्बर पर हैं।" **वरिष्ठ कानूनविद् ए.जी. नूरानी** के अनुसार देश में सन् 1961 में आपराधिक मामलों में अभियोजन के मुकाबले सजा की दर 64.8 प्रतिशत थी जो सन् 2005 में गिरकर 42.5 प्रतिशत तक आ चुकी थी। ढोंगी, कायर, लाचार तथा स्वार्थों से भरपूर भारतीय समाज भी एक अजीब पहेली है। वस्तुतः पुलिस सुधार या प्रशासनिक सुधारों से पूर्व 'समाज सुधार' अधिक आवश्यक है। देश के **पूर्व मुख्य न्यायाधीश पी.बी. गजेंद्र गड़कर** ने गांधीजी के सत्याग्रह का उल्लेख करते हुए बताया है कि हम किस प्रकार का सत्याग्रह का दुरुपयोग करते हैं। एनी बेंसेण्ट को यह आशंका पहले से ही थी। उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन शुरू करते समय महात्मा गांधी से कहा था—**"जिस दिन भारत आजाद होगा, वह दिन गांधी की पराजय का दिन भी होगा क्योंकि कानून का सम्मान न करने की भावना और 'सिविल नाफरमानी' का उनका उपदेश स्वतंत्र भारत की सरकार के विरुद्ध भी काम में लिया जाएगा। गांधी ने जो लोगों को सिखाया है उसके अनुरूप तो लोग प्रशासन के आदेशों की भी अवहेलना किया करेंगे।"** स्वतंत्रता के कई दशकों के पश्चात् भी भारतीय समाज न तो सरकार एवं प्रशासन को अपना मानता है और न ही सार्वजनिक सम्पत्ति को हानि पहुंचाने में हिचकता है। परिणाम यह कि सभी जगह पुलिस दुविधा में दिखाई देती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय पुलिस की छवि लोकतांत्रिक समाज के अनुरूप नहीं है अतः इसकी छवि एवं कार्यप्रणाली में सुधार होना चाहिए किन्तु प्रश्न यह भी है कि क्या हमारी राजनीतिक व्यवस्था, न्यायिक प्रणाली एवं सामाजिक मूल्यों में बदलाव लाए बिना पुलिस की छवि सुधारी जा सकती है? कदापि नहीं। पुलिस को कोसने से पूर्व हमें स्वयं का मूल्यांकन भी करना होगा। निःसंदेह पुलिस का स्वरूप मानवीय होना चहिए किन्तु क्या यह हमारा कर्तव्य नहीं कि हम भी पुलिस को मानवीय दृष्टिकोण से देखें तथा उसे सुविधाएं एवं सहयोग प्रदान करें। सुधार यदि बहुमुखी तथा बहुआयामी हों तो हमेशा बेहतर परिणाम मिलते हैं।

श्री ओम प्रकाश मेनारिया का मत है कि भारत में पुलिस की छवि उसकी खाकी वर्दी से जुड़ चुकी है। **अतः पुलिस परम्परागत खाकी वर्दी के स्थान पर अन्य किसी रंग की वर्दी निर्धारित की जानी चाहिए।** परिणामस्वरूप खाकी वर्दी तथा इससे जुड़ी कड़वी यादें भारतीय जनमानस से दूर हो सकेंगी।

दूसरी ओर भारतीय पुलिस सेवा के पूर्व अधिकारी यशपाल सिंह का मत है—"हम इस बात को स्वीकार करें अथवा नहीं किन्तु यह सत्य है कि पुलिस, सम्भवतः एक मात्र ऐसी संस्था है जो सही-सही कार्य कर वांछित या अपेक्षित परिणाम दे ही नहीं सकती है। क्या कोई अभियुक्त पुलिस के पास आते ही मात्र 24 घण्टे में अपना अपराध स्वीकार कर लेगा और बिना किसी दबाव के सब कुछ सही-सही बता देगा?"

❐

नक्सलवादियों के चलायमान युद्ध की विवेचना

राकेश कुमार सिंह

द्वितीय कमान अधिकारी
81 बटालियन, के.रि.पु.बल
(छत्तीसगढ़)

नक्सली बारम्बार अपनी युद्ध नीति को छापामार युद्ध से चलायमान युद्ध रणनीति में बदलने तथा पी.एल.जी.ए (PLGA) को पी.एल.ए. (PLA) में बदलने का समय आ गया है बताकर न सिर्फ अपने युद्धनीति को बदल रहे हैं बल्कि अपने हताश कैडरों को उत्साहित एवं ऊर्जावान रखने के प्रयास के साथ ही साथ सुरक्षा बलों को रक्षात्मक शैली अपनाने के लिए दबाव बनाने की कोशिश कर रहे हैं। निसंदेह नक्सलियों ने विगत वर्षो में अपने हिंसक कार्रवाइयों में व्यापक सफलता पाई है तथा यह सफलता उनके प्रभावी रणनीति को दर्शाता है। नक्सलियों को इन नीतियों के परिपेक्ष्य में यह आवश्यक हो जाता है कि उनके सैन्य नीतियों एवं युक्तियों की विस्तृत विवेचना की जाए तथा एकत्रित तथ्यों एवं निष्कर्षों के आधार पर उचित प्रतिकारक रणनीति तैयार की जाए।

नक्सलियों द्वारा देश के कुछ राज्यों खासकर छत्तीसगढ़, झारखण्ड एवं उड़ीसा में लगातार हिंसक आंदोलनों द्वारा असुरक्षा का वातावरण बनाया जा रहा है। साथ ही साथ प्रचार मीडिया का उपयोग कर यह मिथ्य भी फैलाने की कोशिश की जा रही है कि हिंसा एवं हत्याएं सुरक्षा बलों की ज्यादतियों के कारण ही आम लोगों के प्रतिरक्षा का परिणाम है। सुरक्षा बलों के नक्सल विरोधी अभियानों की सफलता में गुणात्मक वृद्धि हो इसके लिए आवश्यक है कि नक्सलियों की रणनीतियों को समझा जाए, उनके मजबूत आधार एवं कमजोरियों का पता लगाया जाए तथा उनसे 'पहल' एवं 'गोपनीयता' को छीन लिया जाए। आम तौर पर, जब सुरक्षा बलों को किसी आंतरिक सुरक्षा संबंधी समस्या के समाधान के लिए भेजा जाता है तो उस समस्या के पृष्ठभूमि के बारे में अधिक जानकारी नहीं होती है और न ही इतना समय होता है। अतः ज्यादातर समय किसी हिंसक आंदोलनों के दौर में जो सुरक्षा बल पहले पहुंचती है उसे काफी हानि उठानी पड़ती है। नक्सली क्षेत्रों में भी के.रि.पु. बल, नागा एवं मिजो के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। लेकिन अब सुरक्षा बल अनुभवों के आधार पर इस संपूर्ण आंदोलन को समझकर इनके सैन्य नीतियों के जवाब में उचित रणनीति तैयार कर सकते हैं। इस लेख में नक्सलियों के सैन्य नीति खासकर उनके बहुचर्चित "चलायमान युद्ध नीति" के बारे में प्रकाश डालने का प्रयास है जिससे कि नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में तैनात सुरक्षा बलों के द्वारा प्रभावी परिचालनिक नीतियों के द्वारा सफलता प्राप्त की जा सके।

सिद्धांत नक्सलवाद जनता की राजनीतिक सत्ता स्थापित करना चाहती है जिससे की वर्ग-संघर्ष खत्म हो तथा सर्वहारा वर्ग का उत्थान हो। वे अपने इस प्रयास में सशस्त्र लोकयुद्ध को महत्वपूर्ण मानते हैं तथा इन प्रयासों के क्रम में सैन्यीकरण को विशेष महत्व दिया जाता है। माओ के प्रसिद्ध वक्तव्य "राजनीतिक सत्ता बंदूक के बैरल से मिलती है" तथा "जनता के सेना के बगैर जनता के पास कुछ भी नहीं है" के आधार पर लोकयुद्ध के लिए एक नियमित सेना बनाना चाहते हैं जो उनके राजनीतिक सत्ता एवं विचारों के अधीन हो। माओ के विचारों से प्रभावित हो नक्सलियों की अवधारणा है कि उनकी सेना पी.एल.जी.ए./पी.एल.ए. एक राजनीतिक सेना है जो पार्टी के राजनीतिक सिद्धांतों एवं नेतृत्व के अधीन लोगों के हितों में बनाई गई है न कि किसी अन्य उद्देश्यों के लिए। यह क्रांतिकारी सेना लोकयुद्ध को गति प्रदान करने

के लिए है। नक्सलियों की दूसरी अवधारणा यह है कि इस बात को हमें मानना चाहिए कि हमारी सेना दुश्मनों से कमजोर है तथा छोटी है। अतः हमारी जीत सिर्फ दुश्मनों को उनके कमजोरियों पर आघात कर तथा अपने संपूर्ण शक्ति को इकट्ठा कर लड़ने में ही संभव है। जब दुश्मन हम पर हावी होने लगे तो हमें पीछे हट जाना चाहिए।

नक्सलियों द्वारा लंबी लड़ाई (Protracted war) की बात निःसंदेह सुरक्षा बलों की उच्च सैन्य क्षमता को स्वीकार करना है। लेकिन नक्सली इसे भी अपनी रणनीति का हिस्सा मानते हैं। माओ के विचारों का अनुसरण करते उनका कहना है हम कमजोर भले ही हैं लेकिन सरकार की सेना की कमजोरियों का फायदा उठाना है तथा उनकी ताकत को अपने छापामार युद्ध से परेशान कर कम करना है। कोशिश यह की जानी चाहिए कि सुरक्षा बल ज्यादा गलतियां करे तथा जन मिलिशिया अपनी गलतियों से सबक सीखते हुए इसमें सुधार करे। इस प्रकार दुश्मनों को उनके कमजोर स्थानों पर मात दें। दुश्मनों को अपने क्षेत्र में प्रलोभनों या धोखे से लाकर उनको परास्त किया जाए। कुछेक बड़ी वारदातों से दुश्मनों में खलबली एवं घबराहट बढ़ जाएगी जिससे अपनी रणनीतियों में बराबर बदलाव लाकर अपना वर्चस्व स्थापित किया जाए।

नक्सली अपने सशस्त्र दस्तों को क्रमिक विकसित कर सशक्त करना चाहते हैं। अनियमित गुरिल्ला बल एवं जन मिलिशिया से ग्राम रक्षा दल तथा स्थानीय गुरिल्ला दस्ता बनाकर क्रमशः गुरिल्ला स्कवेड (Squad) गुरिल्ला प्लाटून एवं गुरिल्ला कंपनी विकसित कर रहे हैं। नक्सलियों ने इन गुरिल्लाओं को आवश्यकतानुसार एकत्रित कर समन्वय रूप से युद्ध करने के प्रयास से पी.एल.जी.ए. का गठन किया है जिसे नक्सली 'पी.एल.ए.' एवं 'बेस एरिया' के गठन के लिए पहला प्रयास मानते हैं।

क्रांतिकारी युद्धनीति के अपने सिद्धांतों के तहत नक्सली छापामार युद्ध (Gureilla warfare) को चलायमान युद्ध (mobile warfare) एवं तदोपरांत पोजीशनल युद्धनीति (Positional warfare) में क्रमिक विकास करना चाहते हैं। चलायमान युद्ध आजकल चर्चा का विषय हैं क्योंकि नक्सली नेतृत्व यह मानने लगा है कि उनके छापामार युद्ध को चलायमान युद्ध में बदलने का समय आ गया है। चलायमान युद्ध का उनका मूल मंत्र है "लड़ो जब तुम जीत सकते हो, और दूर निकल जाओ जब तुम नहीं जीत सकते।" चलायमान युद्ध में किसी खास स्थान पर कब्जा बनाए रखने के बदले प्रतिद्वंद्वी की सेना को तबाह करने एवं आक्रमण करते रहने पर ज्यादा जोर दिया गया है। चलायमान युद्ध में क्रांतिकारी सेना के बयान के लिए त्वरित परिचालन एवं आक्रमण के साथ तुरंत एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में चले जाने (Move) की क्षमता पर बल दिया गया है। इस युद्धनीति के अनुसार बड़े क्षेत्रों में दुश्मन के रणनीति एवं क्षमता के अनुरूप एक जगह से दूसरे जगह बदलने एवं फुर्ती से पुनः एकत्रित होकर आक्रमण करने पर दुश्मनों का ज्यादा नुकसान होने की नीति है। इसमें युद्ध नीति में स्थितियों के अनुसार हमेशा आवश्यक रणनीतियों में बदलाव एवं युद्ध की स्थिति अपने समर्थ के अनुसार ढालने की भी प्रक्रिया है। इसके लिए ज्यादा संख्या में योद्धा एवं नियमित तथा विशेष रूप से प्रशिक्षित सैनिक आधुनिक हथियारों से लैस होकर समन्वय रूप से युद्ध करते हैं। यह छापामार युद्ध से ज्यादा कठिन एवं जटिल है तथा इसके लिए बड़े ऊंचे दर्जे का अनुशासन एवं उच्च कोटी की नेतृत्व क्षमता की आवश्यकता होती है तथा नेतृत्वकर्ता का युद्ध कौशल में निपुण होना आवश्यक है। इसमें 'पहल' एवं 'सरपाईज' हमेशा उनके पास होता है जिससे विरोधी सेना रणनीतियों को हमेशा बदलते रहने को विवश रहता है तथा ज्यादातर नक्सलियों के सैन्य दस्तों की खोज में ही लगे रहना पड़ता है।

छापामार युद्ध मुख्यतः 'आक्रमण करो और भाग जाओ' की नीति अपनाती है। जबकि चलायमान युद्ध, छापामार युद्ध एवं नियमित युद्ध के बीच की रणनीति है। इसमें छापामार युद्ध से ज्यादा समय दुश्मनों पर आक्रमण

करने में लगाया जाता है। गुरिल्लों को समन्वित तरीके से एकत्र कर आक्रमण किया जाता है तथा सारी प्रक्रिया केंद्रित होती है। यह नक्सलियों द्वारा नियमित पी.एल.ए. विकसित करने के क्रम तथा दस्तों की बड़े ईकाईयों को बनाने के प्रयास की स्थितियां हैं। जबकि छापामार दस्तों की छोटी ईकाईयों के अस्तित्व एवं उसमें स्थानीय कमांड में ज्यादा बदलाव किए बगैर बड़ी ईकाईयों द्वारा केंद्रित कमान के तहत आक्रमण करना एवं सुरक्षा बलों को परेशान करने की प्रक्रिया है। इस पद्धति में नक्सली सेकण्डरी एवं बेस फोर्स को एकत्रित कर आक्रमण को अंजाम देते हैं लेकिन उनका लक्ष्य अपनी मेन फोर्स की संख्या को सीधे तौर पर बढ़ा कर मजबूत करने की भी होती है। अतएव, आज की परिस्थितियों में जहां वो चलायमान युद्ध में बदलाव की बात कर रहे हैं स्पष्ट तौर पर अपने सामरिक सैन्य विकास की तरफ बढ़ने के लिए जमीनी तौर पर अनेक कार्य कर रहे हैं। जैसे अपने "Cadre Strength" को बढ़ाकर Main force में सीधे भर्ती करना। ऊंचे दर्जे के हथियारों को हासिल करना। सैन्य समन्वय के लिए आसूचना एवं सूचना तंत्र को विकसित करना। सैन्यीकरण को अपने राजनीतिक विचारधारा के अधीन रखने के लिए उचित अनुशासन, प्रशिक्षण एवं सिद्धांतों पर बल देने के लिए बराबर कैडर से संबंध बनाना एवं नजर रखना इत्यादि कार्यों में लगे हैं। इन जटिल कार्यों में अनेक सूत्रधारों के अलावा इनमें प्रमुख नेता/कैडर लगे हुए हैं जिससे नक्सलियों का निःसंदेह आवागमन एवं संचार नेटवर्क फैल रहा है तथा उनके अधिक expose होने की संभावना भी बनी रहती है। आसूचना तंत्र को इससे महत्वपूर्ण परिचालनिक महत्व की सूचना को इकट्ठा करने पर बल देना चाहिए। जिससे इनके युद्धों की बनती नई रणनीतियों पर कुठाराघात किया जा सके।

अतः नक्सलियों की अवधारणा के अनुसार उनके "चलायमान युद्धनीति" की खास विशेषताएं निम्नलिखित होगी—(क) यह एक छापामार युद्ध से उच्च कोटि की लड़ाई की युक्ति होगी (ख) प्रारंभ में इस युद्धनीति की प्रकृति छापामार युद्ध सी होगी लेकिन क्रमशः यह नियमित युद्ध की रणनीतियों में विकास कर लेगी। (ग) इसमें एक बड़े क्षेत्र में लड़ाई की क्षेत्रों को बदलते रहने की प्रक्रिया अपनाकर काफी मात्रा में बलों को एकत्रित करना होगा (घ) इन लड़नेवाले नक्सलियों के पास एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में चले जाने एवं वहां युद्ध के नए फ्रंट खोलने की अपार क्षमता एवं दक्षता होगी (ड.) इसमें दुश्मनों को उनके कमजोरियों के स्थान या स्थिति में आक्रमण किया जाएगा। (च) यह युद्धनीति दुश्मनों के विनाश करने की नीति है। (छ) परिस्थितियां बदलने पर इस युद्धनीति में तुरंत युक्ति बदलने की आवश्यकता है। (ज) इस युद्धनीति में दुश्मनों से लड़ाई योजनाबद्ध तरीके से लड़ी जाती है। अतः इसके क्रियान्वयन में वक्त लगता है। (झ) इसमें युद्ध के लिए बड़े सैन्य फोर्मेशन बनाने की आवश्यकता है। (अ) इसके लिए सेकेण्ड्री एवं बेस फोर्स को बढ़ाया जाएगा एवं बेस फोर्स के क्रांतिकारियों का शामिल होना आंदोलन के सफलता के लिए आवश्यक है। यह युद्धनीति छापामार युद्ध एवं नियमित युद्ध के बीच की रणनीति है जो नियमित युद्ध के जैसी स्थिति में पहुंचने के पहले की क्रमिक विकास की प्रक्रिया है।

नक्सलियों द्वारा सुरक्षा बलों से लड़ाई बीहड़ जंगलों में हाती है जहां पर वे कुछ दिन रह कर क्षेत्र से वाकिफ हो जाते हैं। जबकि सुरक्षाबलों को क्षेत्र के बारे में कम जानकारी होती है तथा उन क्षेत्रों में मूलतः रहन-सहन एवं जीवन यापन से भिज्ञ नहीं होते हैं। इसी असहजता का फायदा छापामार युद्ध एवं जंगल की लड़ाई में विद्रोहियों को मिलता है। फिर, कुछ खास परिस्थितियों में वारदात कर नक्सली सुरक्षा बलों के प्रतिकारक रणनीति को बहुत हद तक प्रभावित करते हैं। ऐसे मौके उन्हें चुनावों के समय में, कल्याणकारी योजनाओं के कार्यान्यवन की प्रक्रिया में बड़े नेता तथा अधिकारी की भागीदारी के समय या अन्य सामाजिक महत्व के समयों को चुनकर प्रचार

मीडिया के फोकस को अच्छा भुनाते हैं।

नक्सली सुरक्षा बलों पर अम्बुश करने से पहले काफी तैयारियां करते हैं तथा लड़ाई के बारीकियों पर ध्यान देते हैं। जैसे—आक्रमण से पहले या सुरक्षा बलों को धोखे में रखने के लिए—जनमिलिशिया द्वारा कैम्प पर डमी रेड करना, कैम्प के नजदीक बूबी ट्रेप लगाना, प्रेशर बम्ब तथा लैंड माइंस लगाना इत्यादि का प्रशिक्षण देते हैं। सुरक्षा बलों को रास्ते से जनता को प्रेरित कर भटकवाना तथा छोटी-मोटी वारदात कर अवरोध पैदा कर सुरक्षा बलों को परिचालन के लिए उकसाना इत्यादि शामिल है। सफलता के लिए जनमिलिशिया की सक्रिय भागीदारी बहुत जरूरी है। यह भागीदारी जनता को बिना अधिक खतरों के सामना करने की नीति पर होती है जिससे कि उनका सहयोग हमेशा बना रहे। चलायमान युद्धनीति इस तरह की सुरक्षात्मक एवं परिचालनिक सहुलियत प्रदान करती है। कम से कम सिद्धांत यह जनमिलिशिया में विश्वास पैदा करने तथा गुरिल्लों में उत्साह भरने में कुछ हद तक सफल होता है।

नक्सलियों द्वारा अपने सैन्य सशक्तिकरण के लिए आधुनिक हथियारों को हासिल करने पर विशेष बल दिया जा रहा है। विस्फोटकों को लूट कर सुरक्षा बलों के खिलाफ IED का इस्तेमाल कर क्षति पहुंचाकर हथियार लूटना इनके रणनीति का एक अहम पहलू है। एन.एम.डी.सी. के स्टोर से लूटे गए 20 टन विस्फोटकों से, नक्सलियों के अनुसार ही उन्हें काफी फायदा मिला। इन विस्फोटकों के बल पर उन्होंने अपने 12 बोर वाली पी.एल.जी.ए. के द्वारा अनेक शस्त्रागार लूटे तथा सैन्य क्षमता को मजबूत किया। अतः विस्फोटकों की सुरक्षा एवं इसमें प्रयोग के बारे में सही रणनीति बनाने एवं अमल में लाने की जरूरत है। ज्यादातर नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में खदानों की खुदाई एवं अन्य उद्योगों के लिए इसका उपयोग किया जाता है जहां से भ्रष्ट तरीकों से या लूट कर नक्सली विस्फोटकों को हासिल कर रहे हैं। जब तक इन विस्फोटकों का सही हिसाब-किताब एवं सुरक्षा नहीं की जाएगी तब तक नक्सलियों को विस्फोटकों को हासिल करने से नहीं रोका जा सकता है। इसके लिए उद्योग से जुड़े लोगों को विशेष तौर पर सचेत करने एवं संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है। लैंड़ माइंस के द्वारा सुरक्षा बलों को नुकसान पहुंचाने के बाद नक्सली अब आधुनिक हथियारों से सशक्तिकरण पर अपनी नीति केंद्रित कर रहे हैं। क्योंकि अनुभवों एवं संसाधनों से पूर्ण सुरक्षा बल अब इस प्रकार के माइंस इत्यादि से बचाव में सक्षम हैं। इस स्थिति में आमना-सामना होने पर हथियारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

चलायमान युद्ध का एक और फायदा नक्सलियों को राज्यों की सीमा इलाके में काम करने पर मिलता है। झारखण्ड-छत्तीसगढ़, उड़ीसा-छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र—छत्तीसगढ़ एवं आंध्रप्रदेश इत्यादि क्षेत्रों जो नक्सलियों के अपनी रणनीति के अनुसार 'लक्ष्य' क्षेत्र हैं वहां एक राज्य में पनाह लेकर दूसरे राज्य में सुरक्षा बलों पर आक्रमण करते हैं तथा पुनः वापस लौट जाते है। इस प्रक्रिया में जिस राज्य में वारदात होती है वहां की सुरक्षा बल उनके विरुद्ध प्रभावी कार्रवाई नहीं कर पाते हैं। तथा जब तक राज्यों के बीच संयुक्त कार्रवाई की योजना अमल होती है तब तक वे किसी तीसरी जगह पलायन कर जाते हैं। खासकर दंडकारण्य से घिरे क्षेत्रों में इस रणनीति का सफल प्रयोग देखा जा सकता है।

प्रभावी युद्धनीति के लिए एक रणनीति यह भी है कि अपने टैक्टीस में बराबर बदलाव की बात करते रहे जिससे प्रतिद्वंद्वी को इन बदलते परिदृश्य की दृष्टि या खंडन करने तथा अध्ययन करने में संसाधन एवं समय बर्बाद हो। नक्सलियों द्वारा चलयमान युद्ध रणनीति को इन परिदृश्य में भी देखना चाहिए। क्योंकि इनमें लड़ाइयों में सुरक्षाबलों को येन-प्रकारेण नुकसान पहुंचाना ही एक लक्ष्य रहता है। साथ ही साथ इनके दमनकारियों नीतियों से तंग आकर जब इनके साथी स्वयं भी इनका साथ छोड़ रहे हैं तो ऐसी स्थिति में किसी दीर्घकालीन योजनाओं की

बहुत प्रासंगिकता नहीं है।

माओवादियों के जनवरी-फरवरी 2007 के नौवी कांग्रेस में छापामर युद्ध को चलायमान युद्ध में रूपांतरित करने का निर्णय लिया था। नक्सलियों के अनुसार 15 फरवरी 2008 को नयागढ़ जिला मुख्यालय में एक साथ छः जगहों पर आक्रमण उनकी इस नयी युद्धनीति के तहत पहला आक्रमण था। हालांकि बड़ी ईकाईयों के गठन में देरी होने से चलायमान युद्धनीति पूरी तरह से क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है। लेकिन इस बीच नक्सलियों ने छापामार युद्ध एवं चलायमान युद्ध शैली को अपनाते हुए बड़े ही योजनाबद्ध तरीके से कभी एक क्षेत्र तो कभी उसके दूरस्थ दूसरे क्षेत्र, फिर तीसरे क्षेत्र में वारदात कर रहे। 29 जून, 2008 को उड़ीसा के वालीमेना में ग्रे हाउण्ड पर आक्रमण किया जिसमें 46 कर्मी शहीद हो गए। 16 जुलाई, 2008 को मलकानगिरी में उड़ीसा पुलिस के एस.ओ.जी. (SOG) के लैड माइन्स प्रूफ गाड़ी को विस्फोट कर 17 कर्मियों की हत्या, 22 अक्टूबर 2008 को बीजापुर में के.रि.पु.बल पर अंबुश कर 12 कर्मी की हत्या तथा एक फरवरी 2009 को गढ़यिरौली में 15 पुलिस कर्मी की हत्या एवं फरवरी 2009 को नवादा जिला बिहार में 10 पुलिस कर्मी की हत्या कुछ प्रमुख बड़ी वारदाते हैं जिसमें नक्सलियों ने सुनियोजित तरीके से बड़े पैमाने पर आक्रमण कर नुकसान पहुंचाया है।

नक्सलियों के चलायमान युद्धनीति को गहराई से समझने के उपरांत इससे मुकाबला करने की नीति को योजनाबद्ध करने की आवश्यकता है। सुरक्षा बलों को अपने परिचालन के पूर्व नक्सलियों के तुरंत मूव करने की क्षमता, कैडर को एकत्रित कर अंबुश लगाने इत्यादि एवं आधुनिक हथियारों के साथ प्रतिशत सैनिकों की संभावना को ध्यान में रखते हुए बनाना है। प्रति नक्सली अभियानों में खास पहलू यह भी है कि नक्सली लंबी लड़ाई की बात करते हैं तथा धोखा, छल-कपट या अन्य तरीकों से सुरक्षा बलों को नुकसान पहुंचाना चाहते हैं चाहे कृत्य कितना ही बर्बर या अमानवीय क्यों न हो। सिद्धांतों का आवरण ओढ़े, धूर्त एवं मूल्यहीन नक्सलियों की हिंसा को खत्म करने के लिए उन्हें दुश्मन की तरह समझना ही एक उचित प्रतिकारक परिचालनिक रणनीति होगी।

❐

संवेगात्मक बुद्धि एवं पुलिस सुधार

अजित यादव

(शोध छात्र)
व्यावहारिक मनोविज्ञान विभाग
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय,
जौनपुर, उ.प्र.

पुलिस के मानवीय चेहरे को लेकर बहस बहुत समय से हो रही है, लेकिन लगातार घटनाओं से यही सिद्ध होता है अब तक यह बहस, उपदेशों, नसीहतों और डांट-फटकार से आगे नहीं बढ़ पाई है। अनुभव इस प्रकार रहे हैं कि ज्यों-ज्यों पुलिस व्यवस्था का उद्‌भव तथा औपचारिकीकरण होता गया, उसी के साथ-साथ पुलिस और समुदाय के बीच दूरी बढ़ती गई। ऐसा संगठन जिस पर मुल्क की आंतरिक सुरक्षा का दारोमदार है उसमें ऐसी मूल्यहीनता की छाया क्यों प्रदर्शित होती जा रही है? सामान्यजन में इसकी छवि आज जितनी भयावह है वैसी छवि शायद ही विश्व के किसी देश की पुलिस की होगी। दुनिया के किस देश में ऐसा होता होगा जहां गांवों में पुलिस के पहुंचते ही ज्यादातर ग्रामीण घरों के अंदर छिप जाते हैं या कहीं गुम हो जाते हैं यह डर का मनोविज्ञान पुलिस कार्रवाई पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। वर्तमान में भारतीय पुलिस की जैसी स्थिति है उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि पुलिस विभाग अपने अधिकार में कोई कटौती न होने देने के प्रति जितना सतर्क है, उसके अनुरूप कर्तव्य निर्वहन में उतना ही लापरवाह है। इसके दुष्परिणाम कानून एवं व्यवस्था में गिरावट के रूप में सामने आ चुका है। देश विरोधी तत्व और उनके एजेंट छोटे-छोटे कस्बों तक में सक्रिय हो रहे हैं, जिसने पुलिस के समक्ष चुनौतियां उत्पन्न कर दी हैं।

विचारणीय प्रश्न यह है कि वर्तमान लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में पुलिस की सकारात्मक छवि का निर्माण किस प्रकार किया जाए? जिससे समाज में लोकतांत्रिक मूल्य स्वस्थ रूप से पुष्पित एवं पल्लवित हो, ताकि पुलिस में आत्मबल का सृजन एवं विकास हो सके। इतना समय बीत जाने के बाद भी आज तक आम जनता और पुलिस के बीच विश्वास के रिश्ते क्यों नहीं पनप सके? लोग पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवाने या उसकी मदद प्राप्त करने में क्यों हिचकते हैं? अपराधियों को पकड़ने में पुलिस को जनता का सहयोग क्यों नहीं मिलता, देश के विभिन्न भागों में आए पुलिस के अत्याचारों के किस्से सुनने को मिलते हैं। भारतीय जनता के मन में भी अन्य पश्चिमी देशों की भांति पुलिस को अपना दोस्त मानने की मानसिकता क्यों नहीं विकसित हो पाई? क्या सचमुच सारा दोष पुलिस का है, या कुछ और? क्या समाधान है इस सामाजिक और प्रशासनिक समस्या का? सारांश यही है कि भारत में जन साधारण पुलिस से अलग-अलग रहने में ही अपना कल्याण समझता है।

बात जब छवि की चलती है तो पुलिस का आम जनता के प्रति व्यवहार एवं कर्तव्य निष्पादन महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि प्रत्येक पुलिस कर्मी जन सेवक होता है उसे अपने कार्य में हर वर्ग के व्यक्ति के संपर्क में आना पड़ता है। कानून लागू कराने वाली संस्था के रूप में पुलिस अपना कार्य तभी सफलता पूर्वक कर सकती है जब उसे समाज में रहने वाले व्यक्तियों के विभिन्न व्यवहारों का पर्याप्त ज्ञान हो। चूंकि पुलिस कर्मी को बड़ी विचित्र व जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इसलिए उसे मानव स्वभाव का निर्माण करने वाले मूल तत्वों की जानकारी लाभदायक सिद्ध हो सकती है। जिस व्यक्ति से उसे बात करनी है, या व्यवहार करना है उस व्यक्ति की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उसकी शिक्षा, उसकी जाति या समुदाय आदि के बारे में यदि ज्ञान है तो पुलिसकर्मी अपेक्षाकृत अधिक सफलतापूर्वक कार्यकर सकता है।

मानव व्यवहार की अवधारणा : "किसी उद्दीपक के प्रति अभिव्यक्त व्यक्ति की प्रतिक्रिया ही मानव व्यवहार है।" मानव व्यवहार कोई स्थिर धारणा नहीं है। समय-समय पर उसमें परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं, यह एक जटिल प्रक्रिया है और इसी कारण इसकी व्याख्या किसी एक कारक के आधार पर संभव नहीं है।

अब प्रश्न यह उठता है कि समाज का सहयोग किस प्रकार प्राप्त किया जाए? सहयोग प्राप्त करना भी एक कला है। द्वंद्व, हताशा, डर, चिंता, कुंठा, वचन, पूर्वाग्रह, विभेदन, सांप्रदायिकता जैसे न जाने कितने कारक है जिनका हल थानों या जेलों में निश्चित ही नहीं ढूंढा जा सकता।

'परित्राणाय् साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम' यह सूत्र पुलिस का पथ-प्रर्दशक महावाक्य है और प्रायः थानों कोतवालियों पर लिखा भी होता है। किंतु सत्ता में बैठे हुए लोग अपने पद और प्रभाव से अपराधियों को संरक्षण देने पर अमादा होते हैं तो पुलिस का कार्य मात्र दिखावटी आतंक पैदा करना भर रह जाता है। जब हम पुलिस छवि सुधारने संबंधित विषयों से जुड़कर गंभीरता के साथ समस्या समाधान की दिशा में सचेष्ट होते हैं तो प्रतीत होता है कि पुलिस को अपने मनोविज्ञान को बदलने की आवश्यकता है, क्योंकि समाज में उसकी छवि दिनों-दिन बिगड़ती जा रही है। जब तक पुलिस समाज से नहीं जुड़ेगी तब तक कार्य करने में सुधार असंभव है।

सुधार की इस दिशा में हम 'इमोशनल इंटेलीजेंस' अर्थात संवेगात्मक बुद्धि का प्रयोग कर सकते हैं। संवेगात्मक बुद्धि मानव व्यवहार की एक अवधारणा है इस वैज्ञानिक अवधारणा की शुरूआत इस तथ्य में निहित है कि हमारे संवेगों या उदासी जैसी भावनाओं के साथ संबंध है, जिससे इस बात का पता लगाया जा सकता है कि व्यक्ति अपने आप से कितना संतुष्ट या असंतुष्ट है। संवेगों के इस संबंध आधारित अस्तित्व की पहचान से बुद्धि के बारे में इस सम-सामायिक दृष्टिकोण के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है कि संवेग और संबुद्धि साथ-साथ कार्य कर सकते हैं। संवेगात्मक बुद्धि के बारे में विभिन्न अनुसंधानों के नतीजों से ऐसा लगता है कि जो लोग अपनी भावनाओं का ठीक से प्रबंधन कर पाते है और दूसरों के साथ कारगर तरीके से निपट पाते हैं उनके अपने जीवन में अधिक संतुष्ट होने की संभावना रहती है और इसलिए वे सूचनाओं को अधिक सहेज कर रखते हैं और अपेक्षा और अधिक कारगर तरीके से सीख पाते हैं। यह भी स्पष्ट है कि बुद्धि की पारस्परिक धारणा, जो संज्ञानात्मक क्षेत्र तक सीमित थी उसमें हाल के वर्षों में जबरदस्त परिवर्तन आए हैं, इन दिनों बुद्धि को संज्ञानात्मक और संवेगात्मक विशिष्टताओं के अंतरसंबंध के रूप में देखा जाने लगा है, जो सही भी है। अरस्तू ने संवेगात्मक बुद्धि की अवधारणा वाले पक्ष की व्याख्या करते हुए कहा है कि "सही व्यक्ति से सही मात्रा में, सही समय पर, सही उद्देश्य के लिए और सही तरीके से नाराज होने की" विलक्षण क्षमता का नाम है। जर्मन मनोवैज्ञानिक ल्यूनर ने सर्वप्रथम 1966 में इस शब्द का उपयोग किया था, कुछ समय बाद सैलोवी और मेयर ने 1990 में इस विषय वस्तु पर अपना सारगर्भित लेख प्रकाशित कराया। इसके बाद 1994 जब डेनियल गोलमैन ने "इमोशनल इंटेलिजेंस हवाई इट कैन मैटर मोर दैन आई क्यू?" नाम की पुस्तक लिखी तो यह शब्द लोकप्रिय हुआ उनकी पुस्तक 50 से भी अधिक देशों में गई और 40 लाख से ज्यादा प्रतियां बिकीं।

मोर और सैलोवी ने 1997 संवेगात्मक बुद्धि की परिभाषा को पुनः परिभाषित किया जिसके अनुसार 'संवेगात्मक बुद्धि संवेगों के बारे में तर्क करने और उसके माध्यम से सोच को बढ़ाने की क्षमता है ताकि विचार प्रक्रिया संवेगों को समझने और संवेगात्मक ज्ञान में मदद मिले'। साथ ही संवेगों को इस तरह से नियंत्रित विनियमित किया जा सके ताकि संवेगात्मक तथा बौद्धिक विकास को बढ़ावा मिले। मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही मनुष्य और इसका व्यवहार अनुसंधान का दिलचस्प क्षेत्र रहा है।

टेक्नोलाजी के विकास और अनुसंधान में बढ़ोतरी

से जो जबरदस्त प्रगति हुई है उसे देखते हुए अमेरिकन साइकोलाजिस्ट्स एसोसिएसन ने 21वीं शताब्दी के प्रथम दशक को 'व्यवहार का दशक' घोषित किया है। पिछले दशक में इमोशनल इंटेलिजेंस यानी संवेगात्मक बुद्धि की धारणा व्यक्ति के व्यवहार तथा अपने परिवेश से उसके अनुकूलन की गुत्थी समझने के लिए वैज्ञानिक अवधारणा बन चुकी है। हाल के अध्ययनों से संकेत मिलता है कि संवेगात्मक बुद्धि, स्कूल, समुदाय, व्यापार, संगठन में रोजमर्रा की समस्याओं को सुलझाने के तौर तरीकों को प्रभावित करती है। व्यक्तिगत स्तर पर इससे संप्रेषण कौशल, नैतिकता, नेतृत्व समस्याओं के समाधान की प्रक्रिया और सौंदर्य बोध का आकलन किया जा सकता है।

उपर्युक्त बिंदुओं को पुलिस संदर्भ में देखने से यह पता चलता है कि यदि इमोशनल इंटेलीजेंस को 'कम्युनिटी पुलिसिंग' में शामिल किया जाए तो संभव है कि जनता द्वारा पुलिस को सक्रिय सहयोग मिल सकता है यह प्रक्रिया दोनों के आपसी सहयोग द्वारा संभव है परंतु दुर्भाग्य से भारत में पुलिस पब्लिक संबंधों में सामंजस्य की कमी है। ऐसा नहीं है कि सभी पुलिस कर्मी गलत कार्यों में लिप्त हैं। साहसी, कर्तव्यनिष्ठ एवं सक्षम पुलिस कर्मियों ने अपने उल्लेखनीय क्रियाकलापों से पुलिस के प्रति आदर व सम्मान का भाव पैदा किया है। इसके विपरीत यदि दोनों में आपसी सहयोग तथा तालमेल न हो तो अपार क्षति भी होती है। उदाहरण के लिए यदि कोई अपराध होता है तो प्रायः 90 प्रतिशत या उससे अधिक मामलों में उन घटनाओं के चश्मदीद गवाह होते हैं, जो अपराधियों द्वारा डराए, धमकाए जाने के कारण या अपनी संभावित निजी आपदाओं को ध्यान में रखते हुए उन अपराधियों के विरुद्ध जुबान नहीं खोलते हैं, घटना का पूर्ण विवरण न मिलने के कारण पुलिस को फोरेंसिक विशेषज्ञों के सहारे रहना पड़ता है। गंभीर अपराधों में जन समुदाय का ऐसा ही रूख होने के कारण दुर्दान्त अपराधी भी या तो पुलिस के पकड़ से बच निकलते हैं या पकड़े जाने पर साक्ष्यों के अभाव में छूट जाते हैं।

इसका दुष्परिणाम यह होता है कि छोटे-छोटे अपराध करने वाले व्यक्तियों का मनोबल बढ़ता है वे धीरे-धीरे अधिक गंभीर अपराध करने लगते हैं। उसके अपराध का शिकार होता है वही समाज जो उसे छोटे अपराध करते हुए देखकर भी निजी स्वार्थों के कारण मूक दर्शक बना रहा, और पुलिस अन्वेषण के समय अपनी जुबान पर ताला लगा दिया। दूसरी और पुलिसजनों को जनता की सुरक्षा एवं अपराध नियंत्रण में जनता का सहयोग न मिल पाने से, और उसके बाद साक्ष्य के कारण गिरफ्तार अपराधी बरी हो जाने से पुलिसजनों में क्षोभ पैदा होना स्वाभाविक है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनके मन में सामाजिक सुरक्षा के प्रति उदासीनता का भाव पैदा होना अस्वाभाविक नहीं है। इतना ही नहीं जनता के पूर्ण तटस्थ पर भी पुलिस द्वारा कहीं कोई असफलता हाथ लगने पर पुलिस को उसी जन समुदाय की कटु अलोचना का शिकार भी होना पड़ता है इससे प्रकट है कि पुलिस और जनता के बीच सहयोग की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके बिना राष्ट्रीय सुरक्षा एवं विधि व्यवस्था बनाए रखना असंभव है।

पुलिस और जनता के बीच मतभेद एवं दूरी भारत सहित विश्व के अनेक देशों की समस्या है। दिन-प्रतिदिन व्यवस्था को चुस्त दुरूस्त करने के बावजूद अपराधों के बढ़ने के कारण सरकारों ने आत्म निरीक्षण किया है, तथा निवारक उपाय खोजे हैं। आज विश्व के अनेक देशों में इमोशनल इंटेजीजेंस का प्रशिक्षण देकर क्षमता वृद्धि करने का प्रयास किया जा रहा है।

अमेरिका स्थित 'न्यूयार्क सिटी हाउसिंग अकादमी' ने वहां की पुलिस व्यवस्था सुधारने तथा अधिकारियों में क्षमता वृद्धि के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम डिजाईन किए हैं, उक्त प्रशिक्षण में सांवेगिक सामाजिक क्षमताओं को संवेगात्मक बुद्धि के साथ जोड़कर विपरीत एवं खतरनाक स्थितियों, तनाव, अंर्तवैयक्तिक विवादों की स्थिति में सफलतापूर्वक निर्णय, प्रबंधन एवं समाधान का रास्ता प्रशस्त किया है।

सिटी यूनिवर्सिटी आफ न्यूयार्क के जे. जैकर और मोर्टन बार्ड ने पुलिस अधिकारियों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए एक कार्यक्रम विकसित किया है, जो अर्न्तवैयक्तिक द्वंद्व की स्थिति में प्रभावी होता है। जिसमें तनाव प्रबंधन, प्रभावी वार्तालाप, सहानुभूति, स्व-जागरूकता के साथ क्षमता वृद्धि "एक्टिव इक्सपीरियंसियल लर्निंग" अर्थात बोध प्रशिक्षण की अवधारणा इमोशनल इंटेलिजेंस पर आधारित है।

यूनिवर्सिटी आफ कनेक्टिक के ग्रेगरी साविले ने पुलिस ट्रेनिंग के संबंध में पुलिस प्राब्लम बेस्ट लर्निंग (पी.बी.एल.) की चर्चा की है जिसमें यह अध्ययन किया जाता है कि गंभीर एवं आपत्तिजनक अपशब्दों के प्रति पुलिस अपने संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं पर कैसे प्रतिबंध लगाती है, क्योंकि अमेरिका के नौजवान जो अपनी उच्चश्रृंखल जीवन शैली में किसी प्रकार की दखलंदाजी बर्दाश्त नहीं कर सकते है, पुलिस के लिए (पिग) सुअर जैसे शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। भारत में भी ऐसी घटनाएं आम तौर पर देखने को मिल जाती है जब कोई नेता वी.आई.पी. या बड़े व्यवसायी पुलिस कर्मियों को, अधिकारियों को, तुम जैसे छोटे लोगों के मुंह लगना नहीं चाहते' जैसे जुमले प्रयोग करने से नहीं चूकते हैं। इसके अतिरिक्त पुलिस की तनाव पूर्ण स्थितियों के प्रबंधन और इमोशनल इंटेलीजेंस के लिए 'लर्निंग टैक्टिस' का प्रयोग किया गया है। साथ ही दिन-प्रतिदिन के संवेगों के समाधान जिसमें मनोदशा एवं अभिवृत्ति में सुधार करना है इसके प्रति नेतृत्व क्षमता स्व-निर्धारण आत्म संयम आदि का विकास है।

संवेगात्मक बुद्धि के मापन के उपाय

संवेगात्मक बुद्धि के मापन ने व्यापक रुचि उत्पन्न की है। लेकिन संवेगात्मक बुद्धि की प्रक्रिया की व्याख्या करने वाले बेहतर माडल के अभाव में इसका मापन करना संभव नहीं हो पाया है। मापन के उपकरणों ने एलेक्सीथीमिया और सहानुभूति जैसी बुनियादी अवधारणाओं से स्वरूप ग्रहण किया है। आजकल इस तरह के उपकरणों की कोई कमी नहीं है। लेकिन ये संवेगात्मक बुद्धि की प्रमुख अवधारणाओं पर आधारित है, ये है योग्यता माडल जो संवेगों और परंपरागत रूप से परिभाषित बुद्धि की परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया पर आधारित है, और दूसरा मिश्रित माडल जो मानसिक क्षमता तथा व्यक्तित्व की अन्य विशेषताओं पर आधारित संयुक्त धारणा पर आधारित है (बार-आन, 1997 गोलमैन, 1995) योग्यता के बुनियादी माडल पर आधारित कई अनुकूलित माडल भी उपलब्ध हैं।

जब यह साबित हो चुका है कि सीखने यानी अधिगम का जीवन अनुभवों पर प्रभाव पड़ता है प्लेटों ने कहा है कि हम जो भी सीखते हैं उसका कोई न कोई संवेगात्मक आधार होता है। किसी पर भी संवेगात्मक स्थिति का असर उसकी सीखने की क्षमता पर पड़ता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संवेग व्यक्ति के जीवन पर जबरदस्त प्रभाव डालते हैं।

सिनेमा, समाचार माध्यम एवं दूरदर्शन द्वारा प्रदर्शित पुलिस की भूमिका के अनुरूप ही जनमानस में पुलिस के बारे में विचार बनते हैं। समाचार पत्रों में प्रायः खबरों को चटखारा बनाने की होड़ में अपहरण, बलात्कार, यौन अपराध आदि से संबंधित खबरें विशिष्टता प्राप्त करती हुई मुखपृष्ठ पर स्थान पाती है। सिनेमा में काल्पनिक पात्रों और घटनाओं के बहाने पुलिस की छवि हास्यास्पद, भ्रष्ट एवं अपराधियों को शह देने वालों की प्रस्तुत की जाती है। दूरदर्शन भी इसका अपवाद नहीं है। विभिन्न धारावाहिकों तथा अन्य कार्यक्रमों में पुलिस के इस तथाकथित भ्रष्ट रूप को उजागर करने के मोह से निर्माता निर्देशक बच नहीं सके हैं, दूसरी ओर पुलिस द्वारा अर्जित सफलताओं का कोई प्रचार नहीं होता, और यदि कहीं होता भी है तो वे समुचित स्थान पाने से वंचित रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में पुलिस के प्रति नकारात्मक रुख जनमानस

में प्रबल रहता है और पुलिस पब्लिक के बीच दरार बनी रहती है। भारतीय समाज के विशिष्ट सामाजिक ढांचे को देखते हुए पुलिस पब्लिक संबंधों को मधुर एवं सहयोग पूर्ण बनाने के लिए व्यापक प्रयास करने की आवश्यकता है। शिक्षा के अभाव, गरीबी, ऊंच-नीच, जाति-पाति जैसी बुराइयों के जड़ जमाकर बैठे होने के कारण भारतीय समाज का सहयोग प्राप्त करना आसान नहीं है पुलिस को अजूबा समझने के कारण अधिकांश जनता के मन में पुलिस की छवि अच्छी नहीं है। उन्होंने पुलिस से संपर्क करने से सदैव अपने आप को बचाया है, और पुलिस को बिना समझे, बिना आजमाए ही अपनी नकारात्मक राय बना ली है। अध्ययन भी यही संकेत देते हैं कि जो व्यक्ति पुलिस के संपर्क में आ चुके हैं उनका पुलिस के प्रति मत उन लोगों की तुलना में अधिक उत्तम है जो पुलिस के संपर्क में नहीं आए हैं।

5वीं वार्षिक नेक्सस ई.क्यू.इमोशनल इंटेलीजेंस कॉन्फ्रेंस का आयोजन हालैंड में 12-14 जून 2005 को किया गया इसमें विश्वभर से 32 देशों के 250 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में संवेगात्मक बुद्धि के क्षेत्र में उपयोगी विचारों और बेहतरीन तौर तरीकों के बारे में उपयोगी सुझाव एक मंच से दिए गए। अनेक जाने-माने वैज्ञानिकों ने संवेगात्मक बुद्धि की अवधारणा के बारे में अपने विचारों और निष्कर्षो के साथ-साथ दिन-प्रतिदिन के जीवन को बेहतर और खुशहाल बनाने में इनके उपयोग के बारे में अपने विचार सामने रखे। प्रतिनिधियों ने महसूस किया कि स्कूली पाठ्यचर्या में संवेगात्मक बुद्धि को शामिल करने की जबरदस्त आवश्यकता है, क्योंकि अनुसंधानों से पता चलता है कि संवेगात्मक बुद्धि मादक पदार्थों के बारे में शिक्षा, आत्म हत्या की रोकथाम, हिंसा को रोकने, तनाव प्रबंधन आदि में बड़ी सहायक सिद्ध होती है। वहां इस बात की संभावना है कि वहां संचालकों व कर्मियों में अधिक सकारात्मक संवेग विद्यमान रहे होंगे। यहां यह बताना उपयुक्त होगा कि अमेरिका के इलिनोआ राज्य में सामाजिक और संवेगात्मक अधिगम के मानदंड कायम किए गए है। ये इलिनोआ अधिगम मानदंडों के तहत बनाए गए हैं। 31 दिसंबर 2004 को इलिनोआ स्टेट बोर्ड आफ एजूकेशन ने इन मानदंडों को मूल पाश्यचर्या के रूप में स्वीकार किया।

कार्यालय पर संवेगात्मक लब्धि के मानदंड का उपयोग

ऐसा समझा जाता है कि कामकाजी जिंदगी में बहुत से लोग अपनी संवेगात्मक बुद्धि के बल पर शीर्षस्थ पदों तक पहुंच जाते हैं। अपनी विकसित तथा उच्च संवेगात्मक बुद्धि से वे उच्चतर बुद्धिलब्धि (आई.क्यू.) वालों को पछाड़ने में कामयाब हो जाते हैं। आज बाजार शक्तियां किसी पद पर काम करने वाले की सफलता के लिए संवेगात्मक बुद्धि को अभूतपूर्व महत्व देने लगी हैं। ऊंचे आई.क्यू. से आपको नौकरी तो मिल जाती है लेकिन पेशेवर सफलता की सीढ़िया चढ़ने के लिए संवेगात्मक बुद्धि की आवश्यकता होती है। इसी से आप पदोन्नति करते हुए शीर्ष पदों तक पहुंच पाते हैं। संवेगात्मक बुद्धि की अवधारणा को लोकप्रिय बनाने वाले डेनियल गोलमैन का विचार है किसी व्यक्ति के जीवन की सफलता में बुद्धिलब्धि (आई. क्यू.) संवेगात्मक बुद्धि पर निर्भर करता है। अनुभवों से व्यक्ति के आई.क्यू. के स्तर में जीवन भर खास उम्र के बाद व्यक्ति का आई.क्यू. उसी स्तर पर बना रहता है। भारत में दिलीप सिंह (2001) में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के प्रबंधकों और उनके संवेगात्मक तौर-तरीकों पर आधारित व्यक्तित्व की विशेषताओं पर अनुसंधान किया। उन्होंने पाया कि इन प्रबंधकों की सफलता के पीछे उनकी संवेगात्मक बुद्धि का बड़ा हाथ है।

भारत की वर्तमान स्थिति से अवगत होने पर लगता है कि वर्तमान भारत में दोहरी न्याय प्रणाली पनप रही है—एक ओर कानून है और दूसरी ओर राजनीति कानून लागू करने में पुलिस अधिकारियों को निर्वाचित प्रतिनिधियों

के निर्देशन का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। इससे कानून लागू करने में पुलिस की स्वायत्तता बुरी तरह आहत हुई है। इससे न केवल कानून और व्यवस्था प्रभावित हुई अपितु जनता भी राजनीतिज्ञों के माध्यम से अपील करने की आदी हो गई है। दूसरी तरफ किसी भी कार्रवाई को करते समय पुलिस अधिकारी राजनैतिक प्रभाव की ओर विशेष ध्यान देते हैं क्योंकि उनके भविष्य, तैनाती आदि भी इसी से प्रभावित होने लगती है। इसी लिए ड्यूटी के समय अधिकारी अपने उच्च अधिकारी की उपेक्षा राजनीतिज्ञों के प्रति अधिक सचेत रहते हैं। कुल मिलाकर आधुनिक भारत में कानूनी नियमों पर राजनीति नियमों का दबाव अधिक है और लोकतंत्र के नाम पर आपराधिक न्याय प्रणाली पर राजनीतिज्ञ हावी हैं। ऐसे कार्यों के लिए पुलिस को उत्तरदायी न ठहराया जाए जिस पर उसका सहिग्त नियंत्रण न हो।

अपने क्षेत्र में घटित हर अपराध के लिए वहां के पुलिस प्रभारी को उत्तरदायी नहीं समझना चाहिए। जब तक कि यह न सिद्ध हो जाए कि पुलिस तत्काल पर्याप्त सेवा करने में असमर्थ रही है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जनता की सुरक्षा और रक्षा पुलिस व्यवस्था की गुणवता उन्हें दिए जाने वाले प्रशिक्षण पर आधारित है। जैसा कि पहले बताया गया है कि पुलिस प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

सामान्यतः जनता एवं पुलिस के बीच तनाव रहता है जिसका आधार आम तौर पर जनता को पुलिस से कई शिकायतें रहती हैं—

- पुलिस का रवैया पक्षपात पूर्ण रहता है, कानून और व्यवस्था में अपनी मर्जी करती है तभी क्रियाशील होती है तब जब प्रभावशाली या ऐसे लोगों का मामला हो।
- पुलिस अभद्र भाषा और गाली गलौच के कारण आम नागरिक भी कतराता है।
- पुलिस गरीब प्रभावित लाचार लोगों की सुनवाई तथा मुसीबत में सहायता की दिलचस्पी कम दिखाती है।
- ज़्यादातर मामलों में पुलिस खुद कानून का पालन नहीं करती, मामले को तोड़-मोड़ कर पेश करना मार-पीट, यौन दुर्व्यवहार, हफ्ता वसूली, छिनैती जैसे कार्य से कानून का माखौल उड़ाती है।
- पुलिस में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण वास्तविक मामलों में भी सहायता लेना कठिन पड़ता है। समृद्ध व्यक्ति को इसकी सहज उपलब्धता ने पुलिस पर से लोगों का विश्वास हटा दिया है।

पुलिस को इन शिकायतों पर अब गंभीरता के साथ विचार करना होगा और उन्हें दूर करने के लिए कारगर कदम उठाने होंगे। पुलिस विभाग केवल मुख्य दिशा या महत्त्व बढ़ाने की ओर अग्रसर न होकर लोक शिकायतों पर भी पूरा ध्यान दें। पुलिस विभाग के लिए बेहतर होगा यदि जनता को अपने उत्तर दायित्वों के प्रति शिक्षित व जागरूक कर सकें।

संवेगात्मक बुद्धि की खोज मनुष्य के मनोवैज्ञानिक विन्यास को समझने के हाल के प्रयासों के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। व्यावहारिक स्तर पर पुलिस जिन समस्याओं से परेशान दिखती है या सामना कर रही है उसके समाधान का रास्ता निकालने में यह अवधारणा बेहद महत्वपूर्ण हो सकती है। इस कारण सफल समाज विकास के लिए एक ऐसा माहौल बनाएं जिसमें सभी कारगर तरीके से सीख सके, कुछ संशोधित मूल्यों पर ज़ोर देना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में संवेगात्मक बुद्धि को पढ़ाई, लिखाई से इतर के गतिविधि के रूप में देखा जाना चाहिए। इसी प्रकार उपर्युक्त सुझावों पर सार्थक कार्रवाई के द्वारा पुलिस की छवि सुधार करके एवं उसकी कार्यकुशलता बढ़ाकर जनता का कल्याण किया जा सकता है। साथ ही राष्ट्र के बहुमुखी विकास में योगदान दिया जा सकता है।

❑

महिला बंदियों की समस्याएं

डा. प्रीति मिश्रा

प्राध्यापक समाजशास्त्र, सी.जी. महाविद्यालय,
रायपुर, छत्तीसगढ़

विनोद मिश्रा

रिसर्च एसोसिएट, गृहमंत्रालय भारत सरकार,
पुलिस कॉलोनी ई—1/8, नेहरू नगर, भोपाल

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जहां एक ओर महिलाओं की सामाजिक स्थिति को ऊपर उठाने के लिए विश्व व्यापी प्रयास किए जा रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ भौतिकवादी संस्कृति के कारण अपराधीकरण एक गंभीर समस्या के रूप में उभरी है। विगत समय में अपराध का पुरुष वर्ग से संबंध होता था। समाज में अपराध का ग्राफ दिनोंदिन ऊपर की तरफ बढ़ता जा रहा है।

जहां एक ओर पुरुष अपराधिता बढ़ी है, वहीं दूसरी तरफ महिलाओं ने भी अपराध में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। जो कि समाज के विघटन का सूचक है। वर्तमान समय में 96% अपराध पुरुष वर्ग द्वारा कारित किए जाते हैं एवम 4% अपराध महिला वर्ग द्वारा कारित किए जाते हैं, जिसे हम निम्न तालिका के द्वारा समझ सकते हैं

तालिका नं. 1.1

वर्ष 2006 के अंत तक जेलों में पुरुष व महिलाओं की स्थिति

कु. सं.	राज्य/संघ राज्य	पुरुष	महिला
1.	आंध्र प्रदेश	14576	845
2.	अरुणाचल प्रदेश	-	-
3.	आसाम	8295	243
4.	बिहार	42863	1418
5.	छत्तीसगढ़	9888	471
6.	गोवा	360	20
7.	गुजरात	11295	498
8.	हरियाणा	12154	533
9.	हिमाचल प्रदेश	1291	45
10.	जम्मू एवं कश्मीर	2211	59
11.	झारखंड	19930	779
12.	कर्नाटक	12194	506
13.	केरल	6315	189
14.	मध्य प्रदेश	31221	779
15.	महाराष्ट्र	24428	1361
16.	मणिपुर	383	15
17.	मेघालय	612	9
18.	मिजोरम	649	80
19.	नागालैंड	646	28
20.	उड़ीसा	14166	478
21.	पंजाब	14339	776
22.	राजस्थान	13512	471
23.	सिक्किम	222	3
24.	तमिलनाडु	17202	1454
25.	त्रिपुरा	1337	33
26.	उत्तर प्रदेश	64722	1947
27.	उत्तरांचल	2575	69
28.	पं. बंगाल	17141	1052
	कुल (राज्य)	344527	14161
29.	अंडमान निकोबार द्वी.स.	344	2
30.	चंडीगढ़	412	26
31.	दादर एवं नगर हवेली	33	0
32.	दमन एवं द्वीप	53	1
33.	दिल्ली	12937	463
34.	लक्षद्वीप	0	0
35.	पांडिचेरी	308	4
	कुल (संघ राज्य)	14087	496
	कुल (अखिल भारतीय)	358614	14657

(स्रोत : जेल सांख्यिकी, 2006)

इन महिला बंदियों को रखने हेतु मात्र 10 प्रदेशों में विशेष महिला जेल है। जिसे संख्यात्मक रूप से निम्न तालिका के आधार पर समझा जा सकता है :

तालिका नं. 1.2

महिला जेलों की संख्या

कु. सं.	राज्य/संघ राज्य	महिला जेल
1.	आंध्र प्रदेश	2
2.	अरुणाचल प्रदेश	-
3.	आसाम	0
4.	बिहार	1
5.	छत्तीसगढ़	0
6.	गोवा	0
7.	गुजरात	0
8.	हरियाणा	0
9.	हिमाचल प्रदेश	0
10.	जम्मू एवं कश्मीर	0
11.	झारखंड	0
12.	कर्नाटक	0
13.	केरल	1
14.	मध्य प्रदेश	0
15.	महाराष्ट्र	1
16.	मणिपुर	0
17.	मेघालय	0
18.	मिजोरम	0
19.	नागालैंड	0
20.	उड़ीसा	1
21.	पंजाब	1
22.	राजस्थान	2
23.	सिक्किम	0
24.	तमिलनाडु	2
25.	त्रिपुरा	1
26.	उत्तर प्रदेश	1
27.	उत्तरांचल	0
28.	पं. बंगाल	1
	कुल (राज्य)	14
29.	अंडमान निकोबार द्वी.स.	0
30.	चंडीगढ़	0
31.	दादर एवं नगर हवेली	0
32.	दमन एवं द्वीप	0
33.	दिल्ली	1
34.	लक्षद्वीप	0
35.	पांडिचेरी	0
	कुल (संघ राज्य)	1
	कुल (अखिल भारतीय)	15

(स्रोत : जेल सांख्यिकी, 2006)

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय जेलों में रह रही महिला बंदियों को होने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं, समस्याओं के पीछे छुपे कारणों को जानने, समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव पर प्रकाश डालना है। जो निम्न प्रकार हैं :

1. महिला बंदियों की विभिन्न समस्याएं।
2. महिला बंदियों की समस्याओं के मुख्य कारणों को जानना।
3. महिला बंदियों की विभिन्न समस्याओं के परिणाम।
4. महिला बंदियों की समस्याओं को दूर करने केसुझाव।

अध्ययन पद्धति

उपरोक्त लिखित उद्देश्य विभिन्न प्रकार के द्वितीयक श्रोतों के माध्यम से विश्लेषित किए जाएंगे, यह द्वितीय श्रोत व्यापक इंटरनेट सर्वे, नेशनल क्राईम रिकार्ड ब्यूरो नई-दिल्ली, पुलिस विज्ञान आदि से लिए गए हैं :

1. महिला बंदियों की समस्याएं

महिला बंदियों की समस्याओं में सर्वोपरि समस्या उनकी कम संख्या में होना है। बंदी ग्रह में कुल 369493 बंदी 2006 में थे जिसमे से मात्र 14071 महिला बंदी थीं।

ग्राफ न. 1.1

महिला बंदियों की कम संख्या

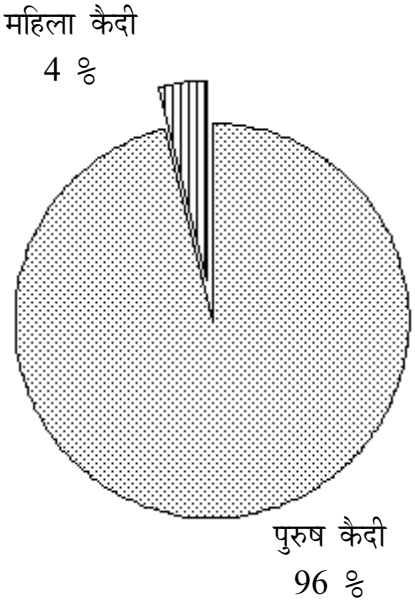

(स्रोत : जेल सांख्यिकी, 2006)

इसका तात्पर्य यह हुआ कि 96% पुरुष बंदी हैं एवं 4% महिला बंदी थीं जिस वजह से महिला बंदियों को विभिन्न समस्याएं होती हैं। जिनमें प्रमुख समस्याएं निम्नानुसार हैं:

(क) परिवार से अलगाव की समस्या

(ख) स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं

(ग) मनोवैज्ञानिक (मानसिक) समस्याएं

(घ) सामाजिक समस्याएं

(ङ) पुनर्वास की समस्याएं

(क) परिवार से अलगाव की समस्या : महिला बंदियों की समस्याओं में परिवार से अलगाव की समस्या प्रमुख है। कारावास के दौरान महिला को दबाव पूर्वक उसके बच्चों एवं परिवार से अलग होना पड़ता है। महिला बंदी बंदीग्रह में रहते हुए भी अपने परिवार की चिंता में परेशान रहती है। क्योंकि महिला ही अपने परिवार के पालन-पोषण एवं बच्चों को संभालने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः महिला के बंदीग्रह में आ जाने से उसके मन में परिवार से अलगाव की समस्या सबसे बड़ी समस्या होती है साथ ही उसे चिंता रहती है कि रिहाई के पश्चात परिवार द्वारा वह अपनाई जाएगी अथवा नहीं।

(ख) स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं : भारतीय बंदीग्रहों में अधिकांशतः महिलाएं ग्रामीण परिवेश से आती हैं जो गर्भावस्था में अपना ईलाज पुरुष चिकित्सक से कराना पसंद नहीं करती एवं छोटे बच्चों हेतु ही यही चाहती हैं कि महिला चिकित्सक से अपनी समस्याएं बताएं परंतु भारतीय जेलों में महिला चिकित्सकों की कमी है जिसके कारण उनको अनेक बीमारियों की समस्या से प्रताड़ित होना पड़ता है। 14071 महिला बंदियों में 418 चिकित्सक अपनी सेवाएं दे रहे हैं जबकि 600 चिकित्सकों की आवश्यकता है।

(स्रोतः जेल सांख्यिकी, 2006)

(ग) मनोवैज्ञानिक (मानसिक) समस्याएं : मनोवैज्ञानिक (मानसिक) समस्याएं : महिलाएं जब बंदीग्रह में आती हैं तो उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक मानसिक सहयोग की आवश्यकता होती है। महिलाओं की मनःस्थिति पुरुषों की अपेक्षा भिन्न होती है। महिला बंदियों के मन में स्वयं के प्रति असुरक्षा एवं हीनभावना बन जाती है। जिस कारण वे एकांत प्रिय एवं खामोश रहने लगती हैं एवं धीरे-धीरे हमेशा तनाव की समस्या से जूझने लगती हैं। हमारे बंदीग्रहों में मात्र 16 मनोचिकित्सक अपनी सेवाएं दे रहे हैं।

(घ) सामाजिक समस्याएं : भारतीय समाज में सदैव से महिला को दोयम दर्जे का माना जाता है। जब एक महिला बंदीग्रह से कारावास पूर्ण कर आती है तो उसके सामने सबसे विकट समस्या समाज की आती है। महिला के द्वारा अपराध यदि अंजाने में भी हो जाता है तो समाज के ठेकेदार अपराध के कारण जाने बिना उसे समाज से बहिष्कृत करने की कोशिश करते हैं। यदि कहीं वह महिला बंदीग्रह से वापस आई हो तो उसे सामाजिक कलंक मानकर उसका स्वयं का परिवार भी उसे अपनाने को तैयार नहीं होता यह एक महिला बंदियों के लिए गंभीर समस्या है।

(ङ) पुनर्वास की समस्याएं : महिला बंदियों की अन्य

समस्याओं में पुनर्वास की समस्या सर्वोपरि है। महिला बंदी जब बंदीग्रह से अपनी कारावास की सजा पूर्ण कर बाहर आती है, तो उसके सामने पुनर्वास की समस्या सबसे बड़ी होती है। ऐसी स्थिति में वह महिला या तो पुनः अपराध की तरफ अग्रसर हो जाती है, या फिर समाज में पुरुष वर्ग द्वारा शोषण का शिकार हो जाती है।

2. महिला बंदियों की समस्याओं के मुख्य कारणों को जानना :

भारतीय बंदीग्रहों में महिला बंदियों को होने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं के पीछे छुपे अनेकानेक कारण हैं जो निम्न प्रकार हैं :

(क) महिला बंदियों की न्यूनतम संख्या
(ख) जेल में महिला स्टाफ की कमी
(ग) महिला बंदियों के प्रति भावनात्मक व्यवहार में कमी
(ङ) संसाधनों की कमी
(च) महिला कारागारों का अभाव
(छ) महिला बंदियों का अशिक्षित होना
(ज) अधिकारियों के प्रशिक्षण का अभाव
(झ) कोर्ट की अनुशंसाओं के अनुपालन में कमी
(ञ) महिला बंदियों के व्यावसायिक प्रशिक्षण का अभाव

(क) महिला बंदियों की न्यूनतम संख्या : भारतीय बंदीग्रहों में महिला बंदियों की समस्याओं के पीछे महिला बंदियों की कम संख्या में होना अति महत्वपूर्ण कारण है। बंदीग्रहों में पुरुष बंदियों की संख्या अधिक रहती है। इसलिए कारागार प्रणाली पुरुषों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है, जबकि महिला बंदियों की आवश्यकताएं पुरुष बंदियों से भिन्न होती हैं, जिस कारण महिला बंदियों की कम संख्या में होना इनकी समस्या को बढ़ाने का एक कारण बन जाता है।

(ख) जेल में महिला स्टाफ की कमी : भारतीय बंदीग्रहों में महिला अधिकारियों एवं कर्मचारियों की कमी प्रत्येक कारागार में है। चाहे सुरक्षा, स्वास्थ्य, औद्योगिक प्रशिक्षण, मनोचिकित्सक, अधिकारी कर्मचारी हो सभी आवश्यकता से कम है और जो हैं भी वे प्रशिक्षित नहीं है एवं उन्हें मानवअधिकार, मौलिक अधिकारों की जानकारी बहुत कम है। जिस कारण महिला बंदियों को समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारतीय बंदीग्रहों में 43476 अधिकारियों की आवश्यकता है, जबकि 4659 अधिकारी कार्यरत हैं। वहीं दूसरी ओर 43375 कर्मचारियों की आवश्यकता है जिसमें से 36211 कर्मचारी सेवारत हैं, जिसके आधार पर समझा जा सकता है कि बंदीग्रहों में स्टाफ की कमी अत्यधिक है।

(ग) महिला बंदियों के प्रति भावनात्मक व्यवहार में कमी : भारतीय बंदीग्रहों में प्रसिद्ध महिला बंदियों को बंदीग्रह के कर्मचारियों/अधिकारियों से भावनात्मक सहयोग की कमी रहती है। बंदियों को अपराधी समझकर इनसे वे अपनी ड्यूटी समझकर व्यवहार करते हैं न कि उन्हें आत्म निर्भर एवं सुधारात्मक प्रयास करते हैं। इस कारण इनके मन में और अधिक अशांति निर्मित होती है। विशेष श्रेणी की महिला बंदियों को किस प्रकार सहयोग करना है। जिससे वे सामान्य बंदियों की तरह रह सकें इसके लिए बंदीग्रह अधिकारियों/कर्मचारियों का प्रशिक्षित न होना उनकी समस्या को बढ़ाने का कारण बनता है।

(ङ) संसाधनों की कमी : भारतीय बंदी ग्रहों में बंदियों को प्रदान की जाने वाली सुविधाएं पुराने समय में निर्धारित की गई हैं जो अधिकतर पुरुष बंदियों को ध्यान में रखकर न्यूनतम सुविधाएं हैं किंतु महिला बंदियों की आवश्यकताएं पुरुष बंदियों से बहुत ज्यादा भिन्न होती हैं जिस कारण महिला बंदियों को अनेकानेक तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

(च) महिला कारागारों का अभाव : भारत में महिला बंदियों हेतु मात्र 10 प्रदेशों में 14 महिला बंदीग्रह हैं। महिला बंदीग्रहों की कमी के कारण महिला बंदियों को या तो पुरुष बंदीग्रह में ही अलग से रखा जाता है। या फिर उन्हें उनके घर से अत्यधिक दूर महिला कारागार में भेज दिया जाता है जिसके कारण उनसे मुलाकात करने आने वाले परिजनों का

पूरा दिन चला जाता है एवं किसी कारण से मुलाकात न हो पाने से उन्हें परेशानी होती है जिस कारण परिजन धीरे-धीरे मुलाकात कम करते चले जाते हैं। जिसका परिणाम महिला बंदियों के मन में तनाव की स्थिति को उत्पन्न करता है।

(छ) महिला बंदियों का अशिक्षित होना : भारतीय बंदीग्रहों में अधिकांशतः महिलाएं ग्रामीण परिवेश से आती हैं जिनमें 75% महिलाएं अशिक्षित हैं एवं 20% महिलाएं हाई स्कूल तथा मात्र 5% महिलाएं उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। इन महिला बंदियों का अशिक्षित होने के कारण उन्हें अपने मौलिक अधिकारों एवं मानवअधिकारों का ज्ञान न होने से विभिन्न तरह के अधिकारों के हनन की समस्या को सहना पड़ता है।

(ज) अधिकारियों के प्रशिक्षण का अभाव : भारतीय बंदीग्रहों में सेवारत अधिकारियों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम बहुत कम होते हैं। अधिकारियों को जिस कारण पता ही नहीं रहता कि इन बंदियों को किस प्रकार के व्यवहार द्वारा इनकी सोच (विचारधारा) को बदला जाए। किस तरह से बंदियों को अनुशासन में रखा जाए जिस कारण बंदियों के मूल अधिकारों एवं मानव अधिकारों के हनन की समस्या का सामना करना पड़ता है।

(झ) कोर्ट की अनुशंसाओं के अनुपालन में कमी: भारतीय बंदीग्रहों को और अधिक सुचारू ढंग से चलाने हेतु समय-समय पर माननीय न्यायालय अपनी अनुशंसाएं करता रहता है। विशेषतः महिला बंदियों एवं उनके साथ बंदीग्रह में रह रहे बच्चों हेतु किंतु बंदीग्रह में अधिकारी एवं कर्मचारी इन अनुशंसाओं के पालन में कुछ न कुछ समस्या बताकर आधी अधूरी अनुशंसाओं का पालन करते हैं जिस कारण महिला बंदियों का माननीय न्यायालय की अनुशंसाओं के अनुसार लाभ प्राप्त नहीं होता है।

(ञ) महिला बंदियों के व्यवसायिक प्रशिक्षण का अभाव : भारतीय बंदीग्रहों में महिला बंदियों हेतु चलाए जा रहे व्यवसायिक प्रशिक्षण उच्च गुणवत्ता के न होने के कारण महिला बंदियों में उन्हें सीखने की उत्सुकता का अभाव रहता है। जो व्यवसायिक प्रशिक्षण महिला बंदियों को प्रदान कराया जाता है उसका लाभ बंदीग्रह से बाहर आने पर महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान कराने हेतु नहीं होते। जिस कारण उन्हें बंदीग्रह से बाहर आने पर पुनः विभिन्न प्रकार की परेशानियों को सहने हेतु बाध्य होना पड़ता है। भारतीय बंदीग्रहों में 914 प्रशिक्षकों की आवश्यकता है किंतु 622 प्रशिक्षक कार्यरत हैं।

3. महिला बंदियों की विभिन्न समस्याओं के परिणाम : महिला बंदीग्रहों में रह रही महिला बंदियों की समस्याओं का सबसे अधिक प्रभाव उन महिलाओं के अपने स्वयं के परिवार एवं बच्चों पर पड़ता है। क्योंकि महिला प्राथमिक तौर पर अपने परिवार एवं बच्चों को संभालने वाली होती हैं। महिला के बंदीग्रह में आ जाने के परिणाम स्वरूप उनके बच्चों की देख-रेख एवं पूर्ण सामाजीकरण न हो पाने से बच्चों के भटक जाने का डर बना रहता है। दूसरी तरफ जो महिला बंदीग्रह में अपने परिवार एवं बच्चों से अलग हैं उनकी चिंता में वे स्वयं अधिकतर तनावपूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं। इस प्रकार महिला बंदियों की मुख्य समस्याओं के परिणाम निम्न बिंदुओं के आधार पर देख सकते हैं :

(क) पुनः शोषण की संभावना : भारतीय बंदीग्रहों में महिला बंदियों को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उसके परिणाम स्वरूप बंदीग्रह में आने से पूर्व ज्यादातर महिलाएं समाज के उस वर्ग से आती हैं जहां उनका शोषण किया जाता था। जिसके परिणाम उन्होंने अपराधकारित किया। महिलाओं के प्रति अपराध को निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है :

तालिका नं. 1.3

कु. सं.	वर्ष	कुल भा.दं.स. अपराध	महिलाओं के विरुद्ध अपराध (भा.दं.स.) के मामले	कुल प्रतिशत
1.	2002	17,80,330	1,31,112	7.4%
2.	2003	17,16,120	1,31,364	7.6%
3.	2004	18,32,015	1,43,615	7.8%
4.	2005	18,22,602	1,43,523	7.9%
5.	2006	18,78,293	1,54,158	8.2%

यदि बंदीग्रह में उन्हें औद्योगिक प्रशिक्षण प्रदान कर सम्मान जनक जीवन, आत्म निर्भर, एवं ठीक प्रकार से पुनर्वासित नहीं किया गया तो वह पुनः अपराध करेंगी एवं उनके शोषण की और अधिक संभावना बढ़ जाती है।

(ख) प्रत्यावर्तन की तीव्र संभावनाएं : महिला बंदियों के बंदीग्रह से बाहर निकलने पर अगर उनका सही तरह से समाजीकरण न हो पाया एवं बंदीग्रह में उनको पुनर्वास हेतु व्यावसायिक कुशलता न मिल पाने से उनका दुबारा अपराध कारित करने की और अधिक संभावना बन जाती है एवं बंदीग्रह में विभिन्न तरह के महिला अपराधियों से मिलने से दूसरे तरह के अपराधों की तरफ भी प्रत्यावर्तित होने की तीव्र संभावना बन जाती है।

(ग) निम्न श्रेणी का जीवन : भारतीय बंदीग्रह जिन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर चलाए जा रहे हैं उन उद्देश्यों को पूरा न कर पाने की वजह से महिला बंदी, बंदीग्रह में पुनर्वास हेतु पूर्व प्रशिक्षण सही तरह से न होने से बंदीग्रह से बाहर आने पर समाज एवं परिवार उन्हें अपने साथ रखने या अपनाने को तैयार नहीं होता, परिणाम स्वरूप उन्हें निम्न श्रेणी का जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

(घ) आत्म-हत्याएं : महिलाएं जब बंदीग्रह में आती हैं तब उनके मन में विभिन्न प्रकार के विचार रहते हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण सोच यह रहती है कि उसे समाज में कलंकिनी माना जाएगा एवं समाज में उसके जीवन का अब कोई औचित्य नहीं बचा। ऐसी स्थिति में उन्हें विशेष मनोवैज्ञानिक सहयोग की आवश्यकता होती है किंतु बंदीग्रहों में मानसिक सहयोग न मिल पाने के कारण उनके मन में यही विचारधारा बैठ जाती है एवं बंदीग्रह से बाहर आकर ज्यादातर महिलाएं अपने जीवन को समाप्त कर लेती हैं।

4. महिला बंदियों की समस्याओं को दूर करने के सुझाव : भारतीय बंदीग्रहों में रह रही महिला बंदियों को विभिन्न तरह की समस्याओं जैसे स्वास्थ्य, सुरक्षा, मानसिक सहयोग एवं आवश्यक आवश्यकताओं को निम्न सुविधाओं द्वारा कम किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं :

(क) भेदभाव पूर्ण व्यवहार को समाप्त करना।
(ख) प्रशिक्षण के द्वारा आत्म निर्भर बनाना।
(ग) भावनात्मक लगाव एवं बातचीत को बढ़ाना।
(घ) महिला अधिकारियों की कमी को दूर करना।
(ङ) महिला बंदीग्रहों की कमी को दूर करना।
(च) बाहरी दुनिया से संपर्क एवं वार्तालाप।
(छ) स्वास्थ्य सुविधाओं एवं चिकित्सकों की कमी को दूर करना।
(ज) महिलाओं की विशेष आवश्यकताओं हेतु स्वयं सेवी संगठनों की सहायता लेना।

उपसंहार

यदि महिला बंदियों हेतु माननीय न्यायालयों द्वारा समय-समय पर दी गई विभिन्न प्रकार की अनुशंसाओं का पालन ठीक तरह से किया जाए तो महिला बंदियों की समस्याएं बहुत हद तक कम की जा सकेंगी एवं जिन सुधारात्मक उद्देश्यों को लेकर बंदीग्रह चलाए जा रहे हैं उन उद्देश्यों को प्राप्त कर महिला बंदियों को ठीक ढंग से पुनर्वासित कर सकेंगे।

❐

मानवाधिकार, पुलिस और आतंकवाद

डा. ओमराज सिंह विश्नोई

राष्ट्रीय जन सहयोग व बाल विकास संस्थान, हौज़ खास, नई दिल्ली-110016

भारतीय संविधान में बहुत से मानवाधिकार दिए गए हैं। संविधान में मानवाधिकार स्त्री व पुरुष दोनों को समान रूप से हासिल हैं। विभिन्न परिस्थितियों के कारण व्यक्ति के मानवाधिकारों का हनन हो जाता है। हमारे संविधान में इस स्थिति से बचने के लिए भी पर्याप्त प्रावधान हैं। संविधान में कुछ ऐसी संस्थाओं और आयोगों के गठन की बात कही गई है जिनसे व्यक्ति के मानवाधिकारों को संरक्षण प्रदान किया जा सके। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग और राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग ऐसी ही कुछ संवैधानिक संस्थाएं हैं।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का मूलभूत कार्य है कि वह समूचे देश में प्रत्येक नागरिक के मानवाधिकारों की रक्षा करे और फिर भी यदि किसी व्यक्ति के मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है तो आवश्यक कार्रवाई करें तथा सरकार को दिशा निर्देश दे। महिलाओं के मानवाधिकारों के मामले में यही काम, राष्ट्रीय महिला आयोग करता है। राष्ट्रीय महिला आयोग के अलावा प्रत्येक राज्य में भी राज्य महिला आयोग काम कर रहे हैं। जब बात भारत में बसे अल्पसंख्यकों (मुस्लिम, जैन, बौद्ध आदि) के मानवाधिकारों की आती है तो यहां राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की जिम्मेदारी बनती है। उसी प्रकार दलित लोगों के मानवाधिकारों की, रक्षा के लिए राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग भी काम कर रहे हैं।

एक समय था जब शांति हमारी आत्मा में स्थित थी और देश में चारों ओर अमन-चैन कायम था लेकिन अब परिस्थितियां पूरी तरह से बदल चुकी हैं। देश के हर कोने में आतंकवाद पसरा हुआ है। हम बात चाहे जम्मू-कश्मीर की करें या फिर उत्तर-पूर्वी राज्यों की, राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली की हो या फिर देश की आर्थिक राजधानी मुबंई की, आतंकवाद ने हर तरफ अपना डेरा लगाया हुआ है। आतंकवाद के दौरान मानवाधिकारों का सबसे ज्यादा हनन होता है। इससे भी बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष यह है कि आतंकवाद के दौरान महिलाओं के मानवाधिकारों को बुरी तरह से रौंदा जाता है। आतंकवाद ग्रसित प्रत्येक देश में देखा गया है कि वहां औरतों के मानवाधिकारों का बुरी तरह से हनन होता है। औरतों के मानवाधिकारों को संगीनों के साए तले आतंकवादी भी रौंदते हैं तथा सुरक्षाबल भी पीछे नहीं रहते हैं इस घिनौने काम में। जिस क्षेत्र में आतंकवाद होता है वहां की औरतों के साथ निर्मम यौन उत्पीड़न किया जाता है, उनके साथ बलात्कार होता है और उनकी अस्मत को बुरी तरह से नोंचा-खसोटा जाता है। आतंकवादी बालिकाओं को भी नहीं बख्शते हैं। छोटी-छोटी मासूम लड़कियों के जिस्मों से भी खूब खेला जाता है आतंकवादियों का कोई धर्म नहीं होता है। वास्तव में आतंकवादी औरतों के जिस्म से जब खेलना शुरू करते हैं तो वे ये नहीं देखते हैं कि यह जिस्म मुस्लिम का है या हिंदू का। उनके लिए औरत का जिस्म एक 'सेक्स ऑब्जेक्ट' भर होता है। औरत के जिस्म को जानवरों की तरह नोचते तथा खसोटते हुए उनकी निर्मम हत्या भी करते रहते हैं। आतंकवादी मानव न रहकर, राक्षस प्रवृत्ति की तरफ बढ़ता जा रहा है। इसका दुष्परिणाम मानव समाज भोग रहा है। भविष्य में मानव समाज सर्वनाश की तरफ बढ़ता चला जा रहा है।

आज विश्वभर में मानवाधिकार सबसे ज्यादा चर्चित विषय है। दुनियाभर में सम्मेलन तथा सेमिनार आयोजित किए जा रहे हैं। हालांकि पुलिस का काम है लोगों के

अधिकारों की रक्षा करना लेकिन कई बार पुलिस तथा अन्य सुरक्षा बलों पर ही लोगों के मानवाधिकारों के उल्लंघन का आरोप लग जाता है और ये आरोप गलत भी नहीं होते हैं। पुलिस बलों के खिलाफ आज दुनियाभर में मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामले लगातार बढ़ते जा रहे हैं। हमें यह यहां भी ध्यान में रखना होगा कि पुलिसबलों का काम ही कुछ ऐसा है कि उन्हें जनहित में अक्सर ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिनसे अपराधियों के तथाकथित मानवाधिकारों का उल्लंघन हो जाता है।

मानवाधिकारों का दायरा समय के साथ-साथ लगातार बढ़ता जा रहा है। आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलनों आदि में इस पर विस्तार से चर्चा की जा रही है। वर्तमान में कुछ नए अधिकार भी मानवाधिकारों की सूची में सम्मिलित हो गए हैं जैसे पर्यावरण सुरक्षा का अधिकार, अच्छे स्वास्थ्य का अधिकार और आतंकवादियों के मानवाधिकार। आजकल तो सूचना के अधिकार को भी मानवाधिकार माना जाने लगा है। वर्तमान में माना जाता है कि पुलिस के खिलाफ अपराधियों के भी कुछ मानवाधिकार होते हैं। दुनियाभर में मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की। इस घोषणा के निम्नलिखित 3 प्रमुख बिंदु हैं :

1. मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, प्रत्येक मानव को मानवाधिकार सुनिश्चित करने की घोषणा है।
2. राष्ट्रों की सीमाओं से परे, समस्त मानव समुदाय के लिए घोषणा जारी की गई है।
3. यह घोषणा मानवाधिकारों की सार्वभौमिकता को घोषित करती है।

मानव परिवार के सभी सदस्यों की जन्मजात गरिमा और सम्मान के अधिकार की स्वीकृति ही विश्व में शांति न्याय और आजादी का बुनियाद है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य देशों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से मानवाधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रताओं के प्रति सार्वभौमिक सम्मान और पालन को प्राप्त करेंगे। घोषणा के अनुच्छेद-1 में कहा गया है कि सभी मानव प्राणी गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र और समान जन्मे हैं, उन्हें बुद्धि और अंतरात्मा की देन प्राप्त है और उन्हें परंपरा भाईचारे के भाव से कार्य करना चाहिए। अनुच्छेद-2 में कहा गया है कि सभी को इस घोषणा में निहित सभी अधिकारों व स्वतंत्रताओं को प्राप्त करने का हक है और इस मामले में जाति, वर्ग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य विचार प्रणाली, किसी देश या समाज विशेष में जन्म, संपत्ति या अन्य प्रकार की मर्यादा के कारण भेदभाव का विचार नहीं किया जाएगा। इस घोषणा में यह भी कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

पुलिस बनाम अभियुक्त : पुलिस को किसी जांच आदि के मामले में किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करना पड़ता है और फिर सच्चाई जानने के लिए अभियुक्त से पूछताछ की जाती है। पूछताछ के दौरान मानवता को नहीं भूलना चाहिए। अक्सर इस पूछताछ के दौरान मानवाधिकारियों के उल्लंघन के आरोप लगते रहते हैं। इसी प्रकार आतंकवाद ग्रस्त क्षेत्रों में सुरक्षाबलों और आतंकवादियों के बीच भी मानवाधिकारों के उल्लंघन के आरोप लगते रहते हैं। इन आरोपों में कुछ झूठे भी हों, तो भी कुछ सच्चे होते हैं। पुलिस संगठनों को इस बारे में दोतरफा कार्रवाई करनी होगी—एक तरफ तो मीड़िया को स्वयं सही सूचनाएं देना, गलत बातें छापने पर मानहानि जैसी कार्रवाई। हमेशा सच का साथ देने से ही आंतरिक शक्ति का विकास होता है। मनोबल ऊंचा होता है। आत्मीय शांति भी मिलती है।

अभियुक्त के प्रत्येक अधिकार को सम्मान देना होगा। गिरफ्तारी, हिरासत, पूछताछ आदि के स्तर पर बताए गए नियमों को पालन करने की आदत हर एक पुलिसकर्मी को डालनी होगी। अभियुक्त पर सिर्फ आरोप लगा है और यह जरूरी नहीं कि आरोप सच हो, इसलिए यह मानकर

नहीं चलना चाहिए कि वह अपराधी है। फिर भी अगर यह अपराधी है तो उसे सजा देना पुलिस का काम नहीं है।

व्यक्ति की हिरासत में मौत, बलात्कार या मारपीट से पुलिस के खिलाफ आक्रोश एकदम फटता है। थानों का घेराव, आंदोलन व नारेबाजी होती है, जो पूरे पुलिस व्यवसाय के लिए शर्मनाक बात है। इससे पुलिस की छवि खराब होती है। अभियुक्त के साथ ज्यादती से पुलिसजनों में एक अत्याचारी अभिवृति बनती है, जो आने वाली पुलिस पीढ़ियों द्वारा देखी जाएगी और वो उनके लिए भी मार्गदर्शन बनती जाती है। इसके कारण पुलिस जनता से भी दूर होती है, व सहयोग प्राप्त करने में असफल हो जाती है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए पुलिस को अभियुक्त के मानव सम्मान की रक्षा करनी होगी। जनसहयोग प्राप्त करने के लिए पुलिस को व्यवहार कुशल होना आवश्यक है। भाषाई तमीज़ को पुलिस को नहीं भूलना चाहिए। लोगों के प्रति सोच में परिवर्तन लाना जरूरी है। तभी जनसहयोग मिल पाएगा। लोगों की मदद से ही हम अपराधी की पहचान कर पाएंगे।

पुलिस संगठनों द्वारा अभियुक्तों को हथकड़ी व बेड़ी लगाना सुरक्षा की दृष्टि से अब तक आवश्यक माना जाता रहा था। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने प्रेमशंकर शुक्ला बनाम दिल्ली प्रशासन के मामले में हथकड़ी लगाकर जेल से अदालत तक लाना असंवैधानिक बताया है। ऐसा आदेश दिया गया है कि गंभीरतम अवस्था में भी, कैदी या अभियुक्त को हथकड़ी लगाने पर अधिकारी को इसके कारण लिखने होंगे व न्यायाधीश से सहमति लेनी पड़ेगी। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में जीवन व स्वतंत्रता के अधिकार की विस्तृत व्याख्या के आधार पर न्यायालय ने ऐसा निर्णय दिया है। न्यायालय ने इस मामले में मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा के अनुछेद 5 का भी हवाला दिया है जिसमें यातना व सजा या उपचार के क्रूर, अमानवीय व निम्नकारी तरीकों को मना किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र अभिसमय

संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा द्वारा 10 दिसंबर, 1984 को एक अभिसमय की स्वीकृति दी गई। इस अभिसमय को, यातना और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार तथा दंड के विरुद्ध अभिसमय कहा गया है और यह 26 जून, 1987 से दुनियाभर में लागू हो गया। इस अभिसमय में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ अधिकार पत्र में उद्घोषित सिद्धांतों के मुताबिक, मानव परिवार के सभी सदस्यों के समान अधिकारों की स्वीकृति विश्व में आजादी, न्याय और शांति का आधार-स्तंभ है। इस अभिसमय के प्रमुख अनुच्छेद निम्नलिखित हैं :

भाग-1 अनुच्छेद

इस अभिसमय के संदर्भ में "यातना" शब्द का मतलब ऐसा कोई भी कृत्य है जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति को उससे या किसी अन्य व्यक्ति से जानकारी या कोई इकबालिया बयान प्राप्त करने, या उस व्यक्ति अथवा किसी अन्य व्यक्ति ने जो कार्य किया हो या उस व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति पर जो कार्य करने का संदेह हो उसके लिए व्यक्ति को अथवा अन्य व्यक्ति को आतरिक करने का संदेह हो, उसके लिए उस व्यक्ति को अथवा अन्य व्यक्ति को आतरिक करने या उस व्यक्ति पर नाजायज दबाव डालने—जैसे प्रयोजनों से या किसी भी प्रकार के विभेद पर आधारित कारणों से जान-बूझ कर गहरी शारीरिक या मानसिक पीड़ा अथवा कष्ट किसी सरकारी अधिकारी या सरकारी हैसियत से काम करने वाले किसी अन्य व्यक्ति द्वारा या उसके उकसाने पर या सहमति से अथवा मूक-समर्थक से पहुंचाया गया हो।

अनुच्छेद-2

इस अभिसमय का प्रत्येक पक्षकार राज्य अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले सभी प्रदेशों में यातना की कार्रवाइयों को रोकने के लिए प्रभावकारी वैधानिक, प्रशासनिक, न्यायिक या अन्य कदम उठाएगा।

किसी भी प्रकार की असाधारण परिस्थिति के न होने पर यातना औचित्य नहीं सिद्ध किया जाएगा—चाहे

वह युद्ध की परिस्थिति हो या युद्ध के खतरे की, आंतरिक राजनीतिक अस्थिरता की परिस्थिति हो या किसी अन्य सार्वजनिक आपात स्थिति की।

अनुच्छेद-3

इस अभिसमय को कोई भी पक्षकार राज्य किसी व्यक्ति को उस हालत में निष्कासित नहीं करेगा, न किसी दूसरे राज्य को लौटाएगा या प्रत्यार्पित करेगा जब ऐसा मानने का ठोस कारण हो कि ऐसा करने से उस व्यक्ति के यातना का शिकार हो जाने की आशंका है।

अनुच्छेद-4

अनुच्छेद-9

इस अभिसमय का प्रत्येक पक्षकार राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि यातना की सभी कार्रवाइयां फौजदारी कानून के अधीन अपराध मानी जाएं। यही बात यातना देने के प्रयत्न या किसी भी व्यक्ति द्वारा की गई ऐसी कार्रवाई पर भी लागू होगी जिसका मतलब यातना देने में मिली-भगत या शिरकत हो।

इस अभिसमय का प्रत्येक पक्षकार राज्य ऐसे अपराधों के लिए ऐसे उपयुक्त दंडों का विधान करेगा जो उनकी गंभीरता के अनुरूप हो।

अनुच्छेद-10

इस अभिसमय का प्रत्येक पक्षकार राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि कानून पर अमल कराने वाले सिविल और सैनिक वर्गों के कार्मिकों, सरकारी अधिकारियों और गिरफ्तार, नजरबंद या कैद किए गए व्यक्ति को हिरासत में रखने, उससे पूछताछ करने या उससे किसी प्रकार से व्यवहार रखने वाले अन्य लोगों के प्रशिक्षण में यातना के विरुद्ध निषेध से संबंधित शिक्षा और जानकारी का पूरा-पूरा समावेश हो।

इस अभिसमय का प्रत्येक पक्षकार राज्य इस तरह के हर व्यक्ति के कर्तव्यों और दायित्वों के संबंध में जारी किए गए नियमों या निर्देशों में इस निषेध का समावेश करेगा।

अनुच्छेद-11

इस अभिसमय का प्रत्येक पक्षकार राज्य यातना के हर प्रसंग को रोकने के उद्देश्य से अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले हर प्रदेश में किसी भी प्रकार की गिरफ्तारी, नजरबंदी या कैद में रखे गए व्यक्तियों से पूछताछ के नियमों, निर्देशों, तरीकों और रीतियों तथा साथ ही उनकी हिरासत और उनके साथ किए जाने वाले व्यवहार संबंधी प्रबंधों की व्यवस्थित रीति से समीक्षा करता रहेगा। यह बेहद महत्वपूर्ण अनुच्छेद है।

अनुच्छेद-12

इस अभिसमय का प्रत्येक पक्षकार राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि जहां कहीं ऐसा मानने का उचित आधार दिखाई देगा कि उसके क्षेत्राधिकार में शामिल किसी भी प्रदेश में यातना देने की घटना हुई है वहां उसके समक्ष अधिकारी तत्परता और निष्पक्षता से जांच-पड़ताल करेंगे। अभियुक्तों को संरक्षण प्रदान करने में यह अनुच्छेद महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।

अनुच्छेद-13

इस अभिसमय का प्रत्येक पक्षकार राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि उसके क्षेत्राधिकार में शामिल प्रत्येक प्रदेश में ऐसे हर व्यक्ति को, जिसका आरोप है कि उसे यातना दी गई है, यह अधिकार होगा कि वह सक्षम अधिकारियों से इसकी शिकायत करे और यह अपेक्षा रखे कि वे अधिकारी उस मामले की तत्परता और निष्पक्षता से जांच करेंगे। यह सुनिश्चित करने के लिए जरूरी उपाय किए जाएंगे कि इस तरह की शिकायत करने वाले और गवाहों के साथ इस कारण से कोई दुर्व्यवहार नहीं किया जाएगा और न उन्हें धमकाया जाएगा कि उसने शिकायत की या गवाहों ने गवाही दी।

अनुच्छेद-14

इस अभिसमय का प्रत्येक पक्षकार राज्य अपनी विधि प्रणाली में ऐसी व्यवस्था करेगा कि यातना से पीड़ित व्यक्ति को राहत मिले और उसे उचित तथा पर्याप्त क्षतिपूर्ति

का प्रवर्तनीय अधिकार हो। इस क्षति पूर्ति में यथासंभव अधिक से अधिक पूर्ण पुनर्वास का भी समावेश होगा। यदि यातना के फलस्वरूप उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाए तो उसके आश्रितों को क्षतिपूर्ति का अधिकार होगा।

2. इस अनुच्छेद की किसी भी व्यवस्था का यातना-पीड़ित या अन्य लोगों के क्षतिपूर्ति के ऐसे अधिकार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा जो राष्ट्रीय कानून के अधीन उन्हें पहले से ही प्राप्त हो।

आधुनिक काल में कई विद्वानों ने इस क्षेत्र में कार्य किए हैं। विद्वानों ने पीड़ित व्यक्तियों का वर्गीकरण भी किया है, जिसके अनुसार :

पूर्णतः निर्दोष पीड़ित : यह पहला प्रकार है। हम इस वर्ग में बच्चों और बेहोश व्यक्तियों को रख सकते हैं।

आंशिक अपराधी पीड़ित : जैसे कोई गर्भवती महिला किसी नीम हकीम से गर्भपात कराने के दौरान मारी जाए।

स्वैच्छिक पीड़ित : जैसे सुखमृत्यु द्वारा मारा गया व्यक्ति।

अपराधी से अधिक दोषी पीड़ित : उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति किसी अन्य को अपराध करने के लिए उकसाता है और अन्य व्यक्ति द्वारा अपराध करने पर पीड़ित होता है।

एक अन्य वगीकरण वॉन हेटिंग नामक मशहूर अपराधशास्त्री द्वारा किया गया है। यह वर्गीकरण पुलिस प्रशासन द्वारा अपराधों की रोकथाम में मदद देने वाला भी हो सकता है। इसके अनुसार पीड़ित व्यक्ति चार प्रकार के माने गए हैं—

उत्तेजक पीड़ित : इस वर्ग में वे व्यक्ति आते हैं, जो अपराधी को अपनी क्रिया द्वारा उत्तेजना देते हैं और प्रतिक्रिया में अपराधी अधिक क्रूरता से अपराध करने के लिए उत्तेजित हो जाता है। भारतीय दंड संहिता में वर्णित अचानक प्रकोपन से किए गए अपराध इसी वर्ग में आते हैं

सहयोगी पीड़ित : इस प्रकार के पीड़ित वे हैं, जो अपने लाभ या लालच के कारण अपराध में सहायता देते हैं। पर खुद अपराध के शिकार बन जाते हैं।

आत्म-समर्पण शील पीड़ित : इस वर्ग के पीड़ित से अभिप्राय उन लोगों से है जो अपराधियों के समक्ष आत्मसमर्पण कर देते हैं। मोहल्ले के गुंडों को हफ्ता देने वाले लोग इस प्रकार के पीड़ितों के उदाहरण हैं। पुलिस को ऐसे अपराध होने से रोकने के लिए इनका मनोबल बढ़ाना चाहिए।

अकर्मण्य पीड़ित : ये ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो स्वयं ही अपराधी को अपराध करने का मौका देते हैं और सावधानियां नहीं रखते हैं। अलमारी खुली छोड़ देना, मकान में ताला न लगाकर बाहर जाना आदि इसी तरह के उदाहरण हैं। पुलिस तंत्र द्वारा प्रचार करके घरों, सार्वजनिक स्थानों, वाहनों आदि से संबंधित चोरी इत्यादि पर रोकथाम लगाने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। आजकल सिविल पुलिस द्वारा ऐसा किया भी जाता है। लोगों की मदद से पुलिस चोरी के व्यापार में लिप्त लोगों को पकड़ सकती है तथा समाज के सामने उनकी छवि प्रकट कर सकती है। जनता एवं पुलिस सहयोग अत्यंत जरूरी है।

पुलिस ही वह संस्था है जिससे पीड़ित व्यक्ति प्रायः सबसे पहले संपर्क में आता है। उम्मीद रखता है कि पुलिस पीड़ित इंसान की मदद करेगी। मानवाधिकारों के इस दौर में पीड़ित व्यक्ति के भी कई अधिकार सुनिश्चित हैं। पुलिसकर्मियों को इन अधिकारों को जान लेना आवश्यक है। यह आवश्यक है कि पीड़ित अधिकारों का पुलिस सम्मान करे।

पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह प्रत्येक संज्ञेय अपराध की प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करे। धारा 154 सी.आर.पी.सी. के द्वारा यह प्रावधान प्रतिबंधात्मक बनाया गया है। यदि पीड़ित व्यक्ति की रिपोर्ट दर्ज नहीं की जाती है तो इसी धारा की उपधारा (3) के अनुसार पीड़ित व्यक्ति यह रिपोर्ट पुलिस अधीक्षक को दे सकता है।

आजकल सभी राज्यों में पीड़ित व्यक्ति के इस अधिकार के हनन को गंभीरता से लिया जाता है और थाना प्रभारी की दुर्भावना प्रमाणित होने पर गंभीर दंड दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए राजस्थान पुलिस नियम 1965 के नियम 5.2 (2) में थाना प्रभारी द्वारा निःशुल्क रिपोर्ट दर्ज करने की घोषणा थाने के बाहर प्रदर्शित करने का आदेश दिया गया है, ताकि पीड़ित व्यक्ति के इस अधिकार का उसे ज्ञान हो सके।

धारा 155 सी.आर.पी.सी. के अनुसार असंज्ञेय मामले में इत्तिला देने वाले को थाना प्रभारी द्वारा मजिस्ट्रेट के पास जाने को निर्देशित किया जाएगा। हालांकि इस उपबंध को बड़ी आसानी से लिख दिया गया है, परंतु व्यवहार में इसने पुलिस संगठन के सामने एक बहुत बड़ी दुविधा खड़ी कर दी है। कानून से अनजान एक व्यक्ति थाने में आता है और रिपोर्ट दर्ज कराता है। उसे उम्मीद है कि पुलिस तुरंत मौके पर जाएगी और समस्या को हल कर देगी। पुलिस थाने के मुंशी ने पाया कि रिपोर्ट असंज्ञेय है और पुलिस इसमें कार्रवाई नहीं कर सकती है, इसलिए कार्रवाई बंद कर दी जाती है। ऐसी हालत में प्रार्थी यह सोचता है कि पुलिस कार्रवाई में कोताही कर रही है या दूसरी पार्टी से मिल रही है

अपराध और शक्ति-दुरुपयोग के पीड़ितों को न्याय हेतु घोषणापत्र

सन् 1985 में संयुक्त राष्ट्र की सातवीं कांग्रेस का आयोजन "अपराधों की रोकथाम व अपराधियों से व्यवहार' विषय पर हुआ। इसके आधार पर उपर्युक्त घोषणा संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा 29 नवंबर, 1985 को की गई। इसके मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं :

धारा-1 'पीड़ित' से अर्थ है कि वह व्यक्ति जिसके साथ व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से शारीरिक या मानसिक क्षति, भावनात्मक पीड़ा आर्थिक हानि या मूल अधिकारों का वचन, किसी कार्य या कार्यलोप से कारित किए गए हैं।

धारा-3 इस घोषणा में शामिल प्रावधान सभी पर लागू होंगे, बिना किसी भेदभाव के, जो प्रजाति, रंग, लिंग, आयु, भाषा, धर्म, राष्ट्रीय राजनैतिक मत, सांस्कृतिक विश्वास, संपत्ति, जन्म परिवार, सामाजिक मूल के आधार पर हों।

धारा-4 न्याय तक पहुंच : पीड़ित व्यक्ति धैर्य और सम्मान के साथ व्यवहृत किए जाएंगे। वे न्यायतंत्र तक पहुंचने के हकदार हैं और राष्ट्रीय कानूनों के अनुसार हानि से उन्हें प्रतिकार दिलाया जाएगा।

धारा-5 न्यायिक और प्रशासनिक तंत्र द्वारा पीड़ित का प्रतिकार तुरंत, न्यायपूर्वक और कम खर्चे पर किया जाएगा। पीड़ित को तुरंत प्रतिकार के अधिकार की जानकारी दी जाएगी।

धारा-6 न्यायिक और प्रशासनिक उत्तरदायिता में पीड़ित के लाभ के लिए इस प्रकार सुविधा प्रदान की जाएगी।

लाभ के समय व उसके मामले की प्रगति के बारे में सूचना दी जाएगी।

प्रक्रिया को अपराधी के प्रति पूर्वाग्रह के बिना और संबंधित राष्ट्रीय आपराधिक न्याय प्रणाली के अनुसार चलाया जाएगा।

पीड़ित को सहायता कानूनी प्रक्रिया द्वारा दी जाएगी।

पीड़ित के व्यय को न्यूनतम करने, अंतरंगता की रक्षा करने, सुरक्षा को सुनिश्चित करने तथा उसके परिवार व उसके गवाहों को सहायता देने के कदम उठाए जाएंगे।

मामलों को निपटाने में अनावश्यक देरी को रोका जाएगा।

धारा-8 प्रत्यर्पण- अपराधी या तीसरे पक्ष के द्वारा प्रत्यर्पण को लागू करने संबंधी कानून व प्रक्रिया के द्वारा इसे दांडिक विकल्प के रूप में अन्य आपराधिक दंडादेशों के अलावा दिया जाएगा।

धारा-9 सरकार इस बात का मूल्यांकन करेगी कि प्रत्यर्पण को लागू करने संबंधी कानून व प्रक्रिया के द्वारा

इसे दांडिक विकल्प के रूप में अन्य आपराधिक दंडादेशों के अलावा दिया जाएगा।

धारा-11 जहां लोकसेवक द्वारा या शासकीय अथवा (शासकीय पद पर कार्य कर रहे कर्मी द्वारा कानून का उल्लंघन किया गया हो, वहां प्रत्यर्पण राज्य द्वारा पीड़ित को दिया जाएगा। यदि कोई सरकार जिसके अधीन अधिकारी द्वारा पीड़ित किया गया हो, सत्ता में न रहे हो तो उसकी उत्तराधिकारी सरकार द्वारा प्रत्यर्पण किया जाएगा।

धारा 12 क्षतिपूर्ति जब अपराधी या किसी तीसरे स्रोत द्वारा राशि पूरी तरह पीड़ित को नहीं दी गई हो, वहां राज्य द्वारा आर्थिक क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था की जाएगी-

(क) पीड़ित को, यदि गंभीर अपराध के द्वारा उसे शारीरिक क्षति पहुंची हो या शारीरिक अथवा मानसिक स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ा हो।

(ख) परिवार का, यदि पीड़ित व्यक्ति मर गया हो या शारीरिक या मानसिक रूप से अक्षम हो गया हो।

धारा 13 पीड़ित को क्षतिपूर्ति देने के लिए राष्ट्रीय कोष को स्थापित व वर्द्धित किया जाएगा।

धारा 14 सहायता-पीड़ित व्यक्ति को सरकारी, स्वैच्छिक, व सामुदायिक साधनों द्वारा आर्थिक, चिकित्सीय, मनौवैज्ञानिक व सामाजिक सहायता दी जाएगी।

धारा 15 पीड़ित को स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं की उपलब्धता की सूचना दी जाएगी और पीड़ित की पहुंच संभव कराई जाएगी।

धारा 16 पीड़ित व्यक्ति की आवश्यकता व सहायता के तरीकों के बारे में पुलिस, न्याय, स्वास्थ्य व सामाजिक सेवाओं के कर्मियों को प्रशिक्षण दिया जाएगा।

पुलिस द्वारा मानवाधिकार उल्लंघन को रोकने हेतु एक मार्गदर्शिका केंद्रीय गृह मंत्रालय द्वारा जनवरी 1996 में सभी राज्यों को भेजी गई है। इसमें पैरा संख्या 13 में गवाहों के अधिकार के रूप में धारा 160 (1) दंड प्रक्रिया संहिता का हवाला दिया गया है। इस धारा के उल्लंघन को मानवाधिकार के उल्लंघन की श्रेणी में माना गया है। पुलिस के उच्चाधिकारियों को पैरा संख्या 16 के अनुसार इन निर्देशों के पालन करने के लिए उत्तरदायी माना गया है। केंद्रीय गृह मंत्रालय के पत्र 13026 दिनांक 5.10.93 के अनुसार सभी राज्यों में एक मानवाधिकार प्रकोष्ठ स्थापित करने का निर्देश दिया गया है और इस प्रकोष्ठ को मानवाधिकार उल्लंघन के आरोपों की जांच व प्रगति का मूल्यांकन का कार्य सौंपने का निर्देश है। यह प्रकोष्ठ हर महीने एक मासिक प्रगति रिपोर्ट केंद्रीय गृह मंत्रालय को भेजेगा जिसमें मानवाधिकार उल्लंघन के खिलाफ की गई कार्यवाई का उल्लेख होगा। इस सब प्रगति से यह जाहिर है कि पुलिस संगठनों की समाज के सभी वर्गो के मानवाधिकारों का सम्मान करना चाहिए, क्योंकि उच्च स्तर पर ऐसे उल्लंघन हेतु कड़ी कार्रवाई की जाने की योजना बनाई गई है।

दुनिया भर की औरतें आज आतंकवाद के सह उत्पाद के रूप में यौन-उत्पीड़न और बलात्कारों को झेलने को विवश हैं। आतंकवाद में बहुत सी आपराधिक गतिविधियां भी सम्मिलित होती हैं जैसे—हिंसा, हत्या, बलवा, बम-विस्फोट, अपहरण, सम्पत्ति को नुकसान आदि। चूकि औरतें समाज के एक कमजोर वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं इसलिए वे ही आतंकवाद के दौरान विभिन्न आपराधिक गतिविधियों का शिकार सबसे अधिक होती हैं। आतंकवाद में आतंक का स्थल तो तय होता है लेकिन यह तय नहीं होता कि आतंकवाद का शिकार होने वाले लोगों में औरतों की संख्या ज्यादा होगी या पुरुषों की। दुनियाभर में किए गए शोध व सर्वेक्षण बताते हैं कि आतंकवाद का सबसे प्रतिकूल प्रभाव वहां की औरतों पर ही पड़ता है। जरूरत इस बात की है कि आतंकवाद ग्रसित क्षेत्र की महिलाओं के मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए विशेष प्रयास किए जाएं।

❐

पुलिस सुधार में नई दिशा दृष्टि की आवश्यकता

कु. दीप्ती श्रीवास्तव

शोधछात्रा

289, सैनिक कुंज, नन्दानगर पो. कूडाघाट गोरखपुर. उ.प्र. 273008

मानव प्रवृति कई बार हिंसक होती हुई प्रतीत होती है। जिसके कारण वह अपने नजदीकी रिश्तेदारों के साथ हुई घटनाओं का प्रतिशोध लेने पर उतारू हो जाता है। मनुष्य की इस स्वाभाविक प्रवृति को हमारी सभ्यता, धर्म और संस्कृति, नियंत्रित करने का कार्य करती रही है। उसके बाद हमें कानून के माध्यम से भी नियंत्रित किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि यदि हम पशुओं की तरह तुरन्त बदला लेने पर उतारू हो जाएं तो आदमी और जानवर का फर्क मिट जाता है।

एक पुरानी कहावत है कि जनता को राजा वही मिलता है जिसका वह पात्र होती है। इस कहावत को इस तरह से भी कहा जा सकता है कि जनता को पुलिस भी वहीं मिलती है। जो उसकी सामाजिक चेतना और नैतिकता के अनुकूल होती है। क्या कारण है कि अंग्रेजों ने अपने अलग-अलग उपनिवेशों को अलग-अलग पुलिस दी थी? उन्होंने जो पुलिस हमें दी वैसी ही श्रीलंका को नहीं दी, केन्या को नहीं दी या आस्ट्रेलिया को नहीं दी। ये उपनिवेश अपने नागरिकों की त्वचा रंगों के मामले में तो भिन्न थे ही अपनी सामाजिक संरचना और मूल्यबोध में भी एक दूसरे से काफी अलग थे। पुलिस को अंग्रेजों ने लगभग इन सभी जगहों पर एक आधुनिक संस्था के रूप में खड़ा किया। लेकिन वर्दी ड्रिल तथा पदनामों जैसे बाह्य आवरणों में थोड़ी बहुत समानता होने के बावजूद अपनी आंतरिक संरचना में सभी उपनिवेशों के पुलिस ढांचे अपने-अपने समाज की प्रकृति और आवश्यकता के अनुकूल थे। भारत को 1861 के पुलिस ऐक्ट के माध्यम से एक असभ्य बर्बर और कानून को ठेंगे पर रखने वाली संस्था मिली। लेकिन 1947 में आजादी मिलने के बाद भी हमने पुलिस का चरित्र बदलने की कोशिश नहीं की। हमारे नये प्रमुख वर्गों को भी वहीं पुलिस रास आई जिसकी नीवं 1861 में पड़ी थी। कई आयोग बैठे, उनकी मोटी-मोटी रिपोर्ट आई, अदालत में याचिकाएं दाखिल हुई। उनके फैसले आए, लेकिन नतीजा सिफर रहा।

स्वतंत्रता के बाद देश के कोने-कोने में जिस तरह की घटनाएं घट रहीं है, उन्हें देखकर आसानी से यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में आंतरिक तौर पर हलचल है। कानून व्यवस्था को हाथ में लेने की घटनाएं बढ़ रही हैं। भीड़ हर खतरे से बेपरवाह होकर अपना निर्णय सुना दे रही है। अचानक देशभर में ऐसी हिंसक घटनाओं की झड़ी लग गई है जिनमें आम लोग कानून को अपने हाथ में ले रहे हैं। आज देखने में यह आ रहा है कि किसी घटना के बाद लोग अपना आपा खो दे रहे हैं। तत्काल अपराधी या जिस पर संदेह है उसको निशाना बना रहे हैं। ये घटनाएं देश की आपराधिक न्याय प्रणाली में लोगों के विश्वास की कमी को दर्शाती है। आखिर वह कौन सी वस्तु है जो लोगों को दूसरो को पिटने, खामोश कर देने और जान से मार डालने के लिए मजबूर कर देती है? अक्षम पुलिस, लचर अभियोजन, सुस्त न्यायपालिका और वे जेलें जहां से डान किस्म के लोगों को उपलब्ध कराए गए सुरक्षित घेरे, से आम लोगों का कानून से विश्वास उठ जाता है। न्यायिक सुधारों पर बनी 'माली मथ समिति' हमें बहुत पहले 2004 में ही चेतावनी दे चुकी है कि आपराधिक न्याय प्रणाली लगभग ढह चुकी है, यह सुस्त, अक्षम और अप्रभावी है और इस कारण व्यवस्था पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। समिति ने इसे सुधारने

के लिए सिफारिशें की थीं, जो दुर्भाग्य से मानवाधिकार वादी कार्यकर्ताओं और नागरिक स्वतंत्रता के मसीहीओं के भेष में घूमने वाले निहित स्वार्थी तत्वों के विरोध के शोर के कारण रद्दी की टोकरी में डाल दी गई, और बहुवांछित सुधारों को फिर अटका दिया गया।

सुप्रीम कोर्ट ने पुलिस के कामकाज में व्यापक सुधारों के लिए 22 सितम्बर 2006 को खास दिशा निर्देश जारी किए थे

कई राज्यों ने इन्हें या तो लागू ही नहीं किया, या वे लागू करने का स्वांग करते रहे। दुर्भाग्यवश सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देश को लटकाने, बेदम करने और सम्भवतः उन्हें पटरी से उतारने की हरचन्द कोशिश की गई। सुप्रीम कोर्ट द्वारा नये पुलिस अधिनियम के निर्देश पर एतराज जताने वाले राज्य में से उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, केरल, त्रिपुरा, असम, नगालैंड, मिजोरम, मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश आते हैं।

सुधार का प्रतिरोध हर तरह से है नेता और अफसरशाह यथा स्थिति बनाए रखने के पक्षधर है, क्योंकि इससे आपराधिक न्याय प्रणाली के विभिन्न हिस्सों पर उनका दबदबा बढ़ता है। आज जिस परिवेश में समाज औपनिवेशिक युग के बने कानूनों पर निर्भर है और जहां सुधारों की प्रक्रिया को अदूरदर्शी अफसरशाही और दृष्टिहीन नेताओं ने लटका रखा है, वहां न्याय की अपेक्षा करने वाले लोग हताशापूर्ण उपायों का सहारा लेते हैं। कानून का पालन नहीं करने वाली और कानून तोड़ने वाली पुलिस ही सत्ता में बैठे लोगों की मदद कर सकती है। इसलिए सत्ता की राजनीति करने वाले लोग कतई नहीं चाहते हैं कि पुलिस का चरित्र बदले। पर उनको समाज में बढ़ते अपराधों के लिए जनता के प्रति जवाब देह तो होना ही पड़ता है। अर्द्ध प्रशिक्षित तथा गैर पेशेवर नजरियों वाली पुलिस अपराधों से निपटने में सक्षम नहीं हो सकती। इसलिए स्वाभाविक है कि उनकी उपेक्षा की जाती है कि वह गैर कानूनी तरीके से अपराध रोके। इसके लिए सबसे आसान रास्ता है 'थर्ड डिग्री टार्चर'। मार पिटाई तथा शारीरिक अंग भंग से गुजरता हुआ रास्ता एनकाउण्टरों तक जाता है जिसमें अपराधी को मार ही डाला जाता है न रहे बांस न बजे बांसुरी।

अपराध सिर्फ पुलिस बल के सहारे नहीं रुकेगा। पहले पुलिस का काम अपराध नियंत्रण था। लेकिन अब तक वह खत्म हो गया है। यह राजनीतिक हस्तक्षेप व अन्य दबावों के कारण हुआ है। पुलिस हर तरह के अपराध को खत्म करने या निपटने में सक्षम नहीं हो सकती। अपराध की प्रकृति को देखकर कुछ अपराधों या झगड़ों को समाज, संभ्रांत व्यक्ति घर, परिवार आदि के माध्यम से हल करना होगा। पुलिस हत्या से लेकर दहेज कानून का पालन नहीं करा सकती है। सड़क दुर्घटना, बम विस्फोट, सबको पुलिस के जिम्मे सौंप दिया गया है। कुछ अपराधों और समाजिक रूप से होने वाली ज्यादतियों को समाज के माध्यम से सुलझाने पर पुलिस का काम हल्का हो सकता है।

पुलिस से सुधार के दो मायने सामने होते हैं। सुधार या तो आम जन की दृष्टि से होता है या फिर सत्ता की नीतियों को लागू करने वाले संगठन के रूप में पुलिस बल को विकसित करने के उद्देश्य से किया जाता है। भारत में पुलिस अधिनियम समेत जितने भी कानून हैं वे सभी 1857 के ब्रिटिश सरकार विरोधी युद्ध के बाद बने हैं। सरकार ने पुलिस सुधार के बजाय आधुनिकीकरण पर जोर देना जरूरी समझा। तब से यह आधुनिकीकरण जारी है। यद्यपि पुलिस संघीय व्यवस्था से राज्यों का विषय है लेकिन केंद्र सरकार अपनी ओर से आधुनिकीकरण के लिए हर वर्ष हजारों करोड़ रुपये खर्च करती है। राज्यों में कई स्तरों पर पुलिस सुधार की कोशिश विधान सभाओं के माध्यम से देखी गई है। लेकिन इनमें से कोई भी नागारिकों के अनुरूप खरा नहीं पाया गया। श्री धर्मवीर की अध्यक्षता में राष्ट्रीय पुलिस आयोग का गठन किया गया। धर्मवीर

आयोग द्वारा आठ हिस्सों में प्रस्तुत रिपोर्टों को सहेजकर रख दिया। उनका जोर पुलिस सुधार के बजाय उसके आधुनिकीकरण पर ही था, इसलिए 1980 के बाद पुलिस अत्याचार की शिकायतें बढ़ती चली गईं। कई राज्यों में सरकारें बनी लेकिन किसी ने पुलिस सुधार को अपना कार्यक्रम नहीं बनाया।

पुलिस सुधार के बजाय कानून व्यवस्था के हालात सुधारने के इरादे से नये-नये पुलिस जिले बनाए जाने लगे। पुलिस महकमें में पदों की नई सिढ़ियां बनाने पर ज्यादा जोर दिया गया। कहीं पुलिस आयुक्त प्रणाली अपनाई गई तो कहीं पुलिस महानिदेशक जैसे पद सृजित किए गए। किसी भी पार्टी के राजनीतिक कार्यक्रम में बुनियादी पुलिस सुधार का कार्यक्रम तो समाप्त ही हो गया। लगभग सभी राजनीतिक दलों की सरकारों ने अपने राजनीतिक हितों के लिए पुलिस का इस्तेमाल किया। आज हालत यह है कि राजनीतिक ढांचें के अनुसार पुलिस राज्यों की विषय सूची में है लेकिन नागरिक प्रशासन के लिए राज्यों में पुलिस ढांचों को अपर्याप्त माना जाता है। यह बात स्थापित की जा चुकी है कि लोकतांत्रिक चुनाव के दौरान राज्यों की पुलिस का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है।

अभी हमारे देश में पुलिस कानून अंग्रेजों के समय का ही चल रहा है। अंग्रेजों के समय से पुलिस का काम समाज को दबाना था। आज भी उसी ढर्रे पर पुलिस व्यवस्था चल रही है। पुलिस अपराध को रोकती है। अपराधियों को पकड़ना भी पुलिस के ही जिम्मे है, चार्जशीट, साक्ष्य और ढेर सारी कानूनी चीजों के लिए पुलिस जिम्मेदार है। सबसे पहली जरूरत यह है कि कानून व्यवस्था और केस की जांच करने वाली पुलिस अलग-अलग हो जब तक इसे अलग नहीं किया जाता है तब तक कोई गुणात्मक सुधार नहीं होगा। आज आए दिन नये-नये तरह के अपराध सामने आ रहे हैं। उसका कारण सिर्फ पुलिस और कानून व्यवस्था नहीं है। यह बात सही है कि समाज और तंत्र दोनों में गड़बड़ी है लेकिन हमारी राजनीति और अर्थनीति जिस रास्ते पर जा रही है वह सबसे बड़ा कारण है समाज में कुछ लोगों के पास आकूत समृद्धि है तथा वहीं 40% आबादी गरीब है। भूखे तथा बेरोजगारों की स्थिति में कोई भी सुधार के साथ पुलिस के ढाचें में सुधार भी जरूरी है।

अपने 60 वर्ष में लोकतंत्र में यह अक्सर देखा जा रहा है कि विभिन्न स्तरों पर सुधारों के लिए कोई अन्तराष्ट्रीय संगठन पहल कर रहा है। मानवाधिकार आयोग का गठन भी अपने यहां ब्रिटेन के एक गैर सरकारी अन्तराष्ट्रीय संगठन की पहल पर ही किया गया था। इसी तरह पुलिस सुधार अन्य संगठनों की पहल माना जाता है। यह समझा जाना चाहिए कि अन्तराष्ट्रीय स्तर के गैर सरकारी संगठनों की अपनी राजनीति होती है। उनकी पहल से बहुत तरह के सुधार अवश्य किए जा सकते हैं। लेकिन यह भरोसा नहीं किया जा सकता है कि वे बुनियादि चरित्र वाले सुधार साबित होंगे। इधर राष्ट्रीय मण्डल देशों के एक मानवाधिकार संगठन ने भारत में पुलिस सुधार की दिशा में पहल की है। 2005 में राष्ट्रीय मण्डल देशों में पुलिस की जिम्मेदारी पर उसने एक मसविदा तैयार किया था। उसके दावे के अनुसार कई राज्यों में पुलिस अधिनियम को तैयार कराने में भूमिका अदा कर रहा है। इसके बाद कई अन्तराष्ट्रीय संगठन जैसे संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, ब्रिटिश काउन्सिल और दूसरे संगठनों ने भी भारत में सुधार के लिए पहल की है। तीसरी दुनिया के देशों के एक देश भारत की पुलिस को विकसित राष्ट्र ब्रिटेन और सिंगापुर भेजा गया। 1996 में सुप्रीम कोर्ट में एक याचिका दाखिल कर मांग की कि देश को एक नये पुलिस अधिनियम की जरूरत है। जिस तरह से राजनीतिक विरोध के कार्यक्रमों पर रोक लगाने के लिए न्यायालयों में आर्थिक नुकसानों को सुनवाई का आधार बनाया जाता है। उसी तरह पुलिस सुधार के लिए नागरिकों द्वारा दिए जाने वाले टैक्स को

आधार बनाया गया। इसके आधार पर सरकार से बेहतर पुलिस आयोग की अनुशंसा के बीच इन अनुशंसाओं पर खासा जोर दिया गया है। पहला तो यह कि पुलिस के काम में बाहरी दखल नहीं होना चाहिए। प्रत्येक राज्य में सुरक्षा परिषद का गठन किया जाना चाहिए। पुलिस के मुखिया का चुनाव विशेषज्ञों की एक स्वतन्त्र समिति द्वारा किया जाए इसी में पुलिस के उच्चाधिकारियों के कार्यकाल को निश्चित करने और उसके पूर्व वहां से उन्हें नहीं हटाने और अपराध की जांच करने वाले ढांचें को अलग-अलग करने की बात शामिल है।

पुलिस व्यवस्था में सुधार के लिए हमें अन्य देशों की ओर देखना होगा ताकि कुछ नई दृष्टि तय कर सकें। लेकिन हम इस ओर ध्यान नहीं देते पुलिस तथा जनता के बीच समन्वय होना चाहिए। पुलिस और जनता का अनुपात ठीक नहीं है। एक अरब दस करोड़ लोगों के देश में **15 लाख पुलिसकर्मी हैं सब इंस्पेक्टर सहित** ऊपर के ओहदे पर केवल 15 फीसदी अफसर है। बाकी के 85 फीसदी हैड कांस्टेबल और कांस्टेबल हैं। इस अनुपात को ठीक करना होगा। आस्ट्रेलिया तथा सिगांपुर में एक पुलिसकर्मी ही भीड़ को तितर-बितर कर देता है। लेकिन अपने यहां अगर तीन चार सिपाही ड्यूटी पर हों और वहां दंगा हो जाए तो वे उस स्थिति से बचने का प्रयास करेंगे और कुछ देर बाद पुलिस बल के साथ आएंगे। जनता कानून हाथ में इसलिए ले रही है क्योंकि उसका व्यवस्था पर से भरोसा उठ गया है अगर लोगों को उचित समय से न्याय मिले तो वे क्यों कानून को हाथ में लेंगे? दूसरी ओर हमारे अफसरशाह ऐसे हैं कि भीड़ को देख कर ही काम करते हैं। जहां तक साइबर अपराध तथा वैश्विक अपराध को रोकन की बात है इसके लिए सूचना तकनीक को सक्षम बनाना होगा। अपराध को पूरी तरह से रोकना सम्भव नहीं है। इसके लिए पुलिस, पुलिस प्रशिक्षण और उपकरणों की कमी है। लेकिन बेहतर आपसी समन्वय से अपराध को कम किया जा सकता है। सामान्यः रूप से हमारे सामने पुलिस बल को लेकर कई चुनौतियां हैं। भारत को विकसित देश बनाने के लिए पुलिस अहम भूमिका निभा सकती है। इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए जा सकते हैं?

1. पुलिस स्टेशन भी हर तरह की तकनीकी व सुरक्षा जरूरतों से लैस होना चाहिए किसी भी कार्रवाई के लिए जरूरी साजो-सामान और इलेक्ट्रानिक सुविधाएं वहां उपलब्ध हो।

2. सीनियर अधिकारियों की यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि पुलिस कांस्टेबल का नियमित अंतराल पर प्रशिक्षण होता रहे।

3. पुलिस के अन्दर जिम्मेदारी व जवाबदेही उच्च अधिकारी से शुरू होकर नीचे कांस्टेबल तक आनी चाहिए। आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल हमारे लिए अत्यन्त जरूरी है।

4. पुलिस संचार को बेहतर बनाने के लिए जरूरत इस बात की है कि राज्य वाई-मैक्स और बाई-फाई तकनीक का इस्तेमाल अच्छे ढ़ंग से करे।

5. पुलिस स्टेशन में एक कंप्यूटर होना चाहिए। जिससे शिकायतें दर्ज हो सकें। पुलिस अधिकारियों के ई. मेल का पता प्रकाशित होना चाहिए। जिसमें लोग ई. मेल से भी अपनी शिकायतें दर्ज करा सकें।

6. पूरे पुलिस तंत्र को व्यावहारिक और चुस्त-दुरूस्त बनाने के लिए जरूरी है कि नियमित अंतराल पर विभिन्न स्तर के अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाए। इससे उनकी चेतना और व्यवहार कुशलता में वृद्धि होती है।

❐

उग्रवाद के खिलाफ युद्ध में पुलिस सुरक्षाकर्मियों, मीडिया तथा आम जनता की पारस्परिक भूमिका

संजय रोहिला

संस्कृत अध्यापक, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय मलोया (चंडीगढ़)

अपने निजी व राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिए हिंसा का मार्ग अपनाना ही उग्रवाद है। असंमजस एवं अनिश्चय से पनपते आतंकवाद का आरंभ पश्चिम एशिया से हुआ "ब्लैक सेप्टेंबर" के आतंक से दुनिया में इसकी पहचान बनी।

आज भारत ही नहीं संयुक्त राज्य अमेरिका जैसा प्रभावशाली देश भी इससे अछूते नहीं है। विश्वभर के लिए शांतिदूत की पहचान वाले, "अंहिसा परमो धर्मः" संदेश प्रसारित करने वाले हमारे भारत देश में आज उग्रवाद अपनी चरम सीमा पर है।

अगर नक्शे पर नजर दौडाए तो जोर्डन से लेकर मलेशिया तक के क्षेत्र में भारत एकमात्र स्थिर प्रगतिशील तथा लोक तांत्रिक देश है इसी कारण उग्रवाद बढ़ रहा है। उग्रवादी हमला हमारी आर्थिक तरक्की, हमारी सौहार्द, हमारी विचार धारा, हमारी लोकतंत्र, हमारे सामाजिक ढांचे तथा हमारी जीवन पद्वति को निरंतर नुकसान पहुंचा रहा है।

आतंक का मुद्दा देश की आंतरिक सुरक्षा से जुड़ा होने के कारण आज कोई भी देशवासी अर्थात पुलिस सुरक्षाकर्मी मीडिया तथा आम जनता अनेकता व खंडता सहन करने को तैयार नहीं है।

उग्रवाद के कारण राष्ट्रीय संपति के अतिरिक्त अपूर्णीय जनहानि होना भी स्वाभाविक ही है।

गतवर्ष को आतंकवादी साये में बीते हुए वर्ष की उपमा दी जाए तो अतिशयोक्त नहीं होगा। वर्ष 2008 में उग्रवादी घटनाओं में वृद्धि होने के कारण मरने वालों की संख्या तथा नुकसान उठाने वालों की संख्या में बढ़ोत्तरी होने की चुनौती मानते हुए इस लोकतंत्रीय भारत देश की पुलिस सुरक्षाकर्मी मीडिया तथा आम जनता को पारस्परिक सहयोग देते हुए उग्रवाद से निपटने के लिए ठोस कदम उठाने की सख्त आवश्यकता है।

भारत को अंतर्राष्ट्रीय आतंकवादी गुटों की कार्य शैली उनके प्ररेणास्त्रोंतों, शस्त्र आपूर्ति तथा संपर्को के बारे में दूसरे देशों से सहयोग बढ़ाना होगा।

सौ करोड़ की जनता केंद्र व राज्य सरकारें राजनीतिक पार्टियां पुलिस सुरक्षाकर्मी नागरिक प्रशासन तथा अ नियामक लोग जितनी जल्दी हो सके देश पर छाए काले उग्रवादी साये की गंभीरता को समझें उतना ही बेहतर होगा।

पुलिस सुरक्षाकर्मियों मीडिया तथा आम जनता को उग्रवाद के साथ-साथ देश में पनप रहे अल्पसंख्यकवाद बहुसंख्यकवाद, जातिवाद, भाषावाद, पूंजीवाद, धर्मवाद, प्रांतवाद भिन्न-भिन्न प्रकार के आरक्षणवाद मे अपनी भूमिका पर आत्म-मंथन करना अतिआवश्यकता है।

उग्रवाद के खिलाफ युद्ध में राज्यों और केंद्र में तालमेल जरूरी होने के साथ-साथ पुलिस सुरक्षाकर्मियों, मीडिया तथा आम जनता को मिलाकर कदम बढ़ाना होगा।

हमारे लोकतांत्रिक शासनादेश से यह बात साफ होती है कि उग्रवाद के विरुद्ध कार्य योजना में पुलिस की भूमिका महत्वपूर्ण है और पुलिस का सीधा संपर्क जनता तथा उसके जान-माल से होता है। पुलिस को आम जनता का भरोसा हासिल करते हुए इस युद्ध में प्रभावी जिम्मेवारी वहन करनी चाहिए।

उग्रवाद का आज जिस तरह देश में दूर दराज स्थानों तक विस्तार हो गया, उसके चलते बिना पुलिस के तैयार हुए इस पर काबू नहीं पाया जा सकता। खूफिया सूत्रों तथा पुलिस का तालमेल बहुत जरूरी माना गया है क्योंकि सूचनाओं के आधार पर पुलिस का काम आसान हो सकता है।

खूफिया सूत्रों की भूमिका मीडिया तथा आम जनता द्वारा निभाई जाने पर ही पुलिस द्वारा उग्रवाद पर लगाम कसी जा सकती है।

विभिन्न राज्यों तथा केंद्रशासित प्रदेशों के पुलिस महानिदेशकों और पुलिस महानिरीक्षकों के सम्मेलनों के द्वारा इसके खिलाफ विस्तृत कार्य योजना का क्रियान्वयन आवश्यक है।

सरकारी उपायों के तहत केंद्रीय एवं राज्य पुलिस बलों को उन्नत एवं अत्याधुनिक बनाना, भारतीय रिजर्व बटालियानों को बढ़ाने के लिए सहायता देना, उपकरण एवं प्रशिक्षण के लिए सहायता देना, आतंकवाद की वैश्विक अनिवार्यताओं से निपटने के लिए बहुपक्षीय सहयोग के लिए विभिन्न पहल शामिल होनी चाहिए।

क्षेत्रीय हदों की संख्या में वृद्धि तथा सुरक्षा गारदों की संख्या बढ़ाना, राज्य पुलिस बलों द्वारा कमांडो प्रशिक्षण देने के लिए प्रांत के अधिकतर हिस्सों में घुसपैठ निरोधी तथा उग्रवाद विरोधी शिक्षा प्रदान करने वाली शिक्षण संस्थाओं को खोलना चाहिए ताकि आम जनता भी बढ़चढ़ कर भाग ले सके। खुफिया जानकारियों को जुटाने के लिए पुलिस सुरक्षा कर्मी, मीडिया, आम जनता को आपसी सामंजस्य स्थापित करना होगा।

पुलिस अपने दिल्ली पुलिस के उस जांबाज इंस्पेक्टर जिसने अस्पताल में डेंगू से पीडित अपने बच्चों से मिलने की बजाय अपनी जान न्यौछावर करके दो आतंकवादियों को मार गिराने का साहस व उत्साही कारनामा कर दिखाया था। से प्रेरणा लेकर कर्तव्य पालन के लिए सदैव तत्पर एवं उत्साहित है।

हमारे राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड अपने लेब्राडोर नस्ल के खोजी कुत्तों के साथ इस युद्ध में नाटक का अंत करने का श्रेय पाने के अधिकारी होते है। तो यह हमारे लिए गर्व की बात है।

मीडिया तथा आम जनता को पुलिस तथा सुरक्षा कर्मियों को खूफिया जानकारियां प्राप्त करने में झिझक नहीं होनी चाहिए।

हमारे सुरक्षाकर्मियों को शहरी भीड़ भरे इलाकों में आतंकवादी विरोधी दस्तों की सेना के रूप में, तथा नौ सेना के छापामारों को अपने छापों में वृद्धि के साथ-साथ सही राह आवश्यक है।

राष्ट्र की सेनाओं को इसके खिलाफ प्रभावी कदम उठाना चाहिए जैसे सेना को सीमा से लगते इलाकों में बैरकों या छावनियों की संख्या वृद्धि तथा गश्त बढ़ाया जाना भी महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

सैद्धांतिक तौर पर समुद्रीय एवं तटीय सुरक्षा के समन्वय एवं समग्र पर्यवेक्षण के लिए तटीय कमांडों बल सृजित कर उग्रवादी घटनाओं को रोकने के सफल उपायों का प्रयोग होंगे।

लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ मानी जाने वाली मीडिया की ताकत जनता से है और जनता के बीच अपनी विश्वसनीयता व साख बहाल करने में उसकी असली टी आर पी छिपी है यह तथ्य इस प्रतिस्पर्धी युग में मीडिया के कर्ताधर्ता बखूबी जानने लगे हैं।

इसी कारण स्वयं मीडिया आत्म-मंथन की मुद्रा में हैं जो कि उग्रवाद के खिलाफ मीडिया द्वारा उठाया गया सराहनीय कदम है।

मीडिया को उग्रवाद के समय पारदर्शिता व स्वतंत्रता के साथ साकारात्मक मुद्दों को ही उभारने में महत्वपूर्ण योगदान देना भारतीय परिप्रेक्ष्य में उचित है।

मीडिया की भूमिका लोकतंत्र को नुकसान पहुंचाने वाले उग्रवाद तथा उग्रवादियों के खिलाफ आज के दौर में और भी महत्वपूर्ण बनती जा रही है।

मीडिया जगत को पैसे के लिए पेंशन के लिए कार्य करना चाहिए।

उग्रवादी हमला होने पर कई टीवी चैनल सीधे प्रसारण की व्यवस्था करते हुए "पल-पल की खबर देने वाले" की बात करने वाले तथा" त्रसादी की खबरें दर्शकों तक पहुंचाने में सबसे आगे होने की बात दोहराने वाली मीडिया को इस तरह की दुःखद घटनाओं की जानकारी दर्शको तथा नागरिकों तक पहुंचाने का कर्तव्य है, पर इस कर्तव्य को निभाने के लिए विज्ञापनी अंदाज अपनाना त्रसादियों को मेले और प्रचार के अवसर में बदलने का काम करना मात्र है।

मीडिया को न्यूजब्रांड कास्टिंग एसोसिएशन रीट्रेसल अथारिटी के दिशानिर्देशों के अनुरूप ही कार्यरत होना चाहिए।

आफत के समय राहत कार्य में आम जनता की भूमिका की तरफ ध्यान भी आवश्यक है।

देश के ग्रामीण इलाकों में समय-समय पर स्थानीय लोग आपस में मदद करते हैं लेकिन शहरी लोगों में मदद की भावना क्षीण हो रही है जोकि मानव के लिए खतरा बनता जा रहा है।

उग्रवाद के वास्तविक सफाये हेतु इसके लिए जिम्मेदार मौका परस्त कट्टरपंथीयों को आम जनता ही बेनकाब कर सकती है। उग्रवाद के समय पर आस पास तमाशा देखने वाली आम जनता को अपनी संवेदना हीनता और गैर जिम्मेदाराना व्यवहार को सुधारना होगा। हमले पर उपस्थित लोगों को संभालने और उन्हें आतंकवादियों से लोहा लेने वालों के रास्ते में रूकावट बनने से रोकने के लिए पुलिस को मशक्कत न करनी पड़े यह ध्यान रखने की अपेक्षा सभी से रखी जा सकती है।

इतना संहार होते हुए भी भीरू समझी जाने वाली भारतीय जनता ने नेपथ्य में साहस दिखाते हुए बाकी प्रदेशों के साथ-साथ जम्मू कश्मीर प्रदेश के चुनावों में आतंकवादियों की धमकियों की तनिक भी परवाह न करते हुए दिल खोलकर वोट डालकर आतंकवाद को पछाड़ने की जो पहल की जा रही है उसे हम सबको अनवरत जारी रखना होगा।

स्वयं सरकार द्वारा गठित प्रशासनिक आयोग स्वीकार कर चुका है कि आतंकवाद सामान्य कानून एवं व्यवस्था से दूर का मामला होता जा रहा है इस लिए विशेष कठोर कानून की आवश्यकता पर बल दिया जाना भी महत्वपूर्ण है।

उग्रवाद के खिलाफ युद्ध में आत्मविश्वास में वृद्धि करके याद रखना चाहिए कि भारत यूरोप के स्वीडन या हॉलेंड जैसा छोटा देश नहीं जहां अपराध नहीं, असंतोष नहीं, गरीबी अशिक्षा नहीं लेकिन इसके बाबजूद लोकतंत्रीय भारत निरंतर प्रगतिशील होते हुए चंद्रमा पर तिरंगा लगाकर अपनी क्षमता प्रदर्शित कर चुका है।

अंत में आपात स्थितियों में संयम रखने की जरूरत की तरफ पुलिस सुरक्षाकर्मी मीडिया तथा आम जनता ध्यान दे यह जरूरी है।

पुलिस के आतंकवादी विरोधी दस्ते के सदस्यों की तैयारी की प्रक्रिया को समाचार चैनलों की नजरों से दूर रखने की जिम्मेदारी खुद सुरक्षा बल निभाएं तो ज्यादा बेहतर होगा।

आपात स्थिति के बारे में आम आदमी को समुचित जानकारी मिलनी चाहिए ताकि वह इस काम में यथासंभव मदद कर सके।

❐

पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना के अंतर्गत ब्यूरो द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

क्र. सं.	*पुस्तक का नाम*	*लेखक का नाम*	*मूल्य*
1.	**भारतीय पुलिस का इतिहास** (अतीत काल से मुगल काल तक)	डा. शैलेन्द्र चतुर्वेदी	54/-
2.	**भारत में केन्द्रीय पुलिस संगठन**	श्री एच. भीष्मपाल	65/-
3.	**ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान**	श्री रामलाल विवेक	65/-
4.	**ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान**	श्री शंकर सरौलिया	70/-
5.	**विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका**	श्री आर.एस. श्रीवास्तव	105/-
6.	**स्वातंत्र्योत्तर भारत में पुलिस की भूमिका एवं जनता का दायित्व**	डा. कृष्णमोहन माथुर	210/-
7.	**मादक पदार्थ एवं पुलिस की भूमिका**	श्री हरीश नवल	—
8.	**सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका का उद्‌भव**	प्रो. मीनाक्षी स्वामी	—
9.	**समग्र न्याय-व्यवस्था में पुलिस का स्थान एवं भूमिका**	श्री ललितेश्वर	600/-
10.	**पुलिस दायित्व एवं नागरिक जागरूकता**	डा. सी. अशोकवर्धन	568/-
11.	**महिला और पुलिस**	श्रीमती अमिता जोशी	100/-
12.	**मानवाधिकार और पुलिस**	डा. जी.एस. वाजपेयी	346/-
13.	**नई आर्थिक नीति एवं अपराध**	डा. अर्चना त्रिपाठी	183/-
14.	**बाल अपराध**	डा. गिरिश्वर मिश्र	225/-
15.	**न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियां**	डा. शरद सिंह	200/-
16.	**मानवाधिकार संरक्षण एवं पुलिस**	श्री रामकृष्ण दत्त शर्मा एवं डा. सविता शर्मा	510/-
17.	**सामुदायिक पुलिस व्यवस्था**	डा. तपन चक्रवर्ती डा. रवि अम्बष्ट	205/-
18.	**संगठित अपराध**	श्री महेन्द्र सिंह आदिल	313/-
19.	**पुलिस कार्यों का निजीकरण**	डा. शंकर सरौलिया	330/-
20.	**साइबर क्राइम**	डा. अनुपम शर्मा	450/-

ब्यूरो द्वारा प्रकाशित उपरोक्त सभी पुस्तकें, नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली-110054 से प्राप्त की जा सकती हैं।

लेखकों से निवेदन

यदि पुलिस विज्ञान में प्रकाशन के लिए आपके पास पुलिस, शांति-व्यवस्था, अपराध न्याय-व्यवस्था आदि पर कोई लेख है या आप लेख लिखने में सक्षम हैं तथा रुचि रखते हों तो अपने लेख यथा शीघ्र भेजें। अच्छे लेखों को प्रकाशित करने का हमारा पूरा प्रयास रहेगा। लेख टाइप किया होना चाहिए तथा इसके संबंध में फोटो, चार्ट आदि हों तो उन्हें भी साथ भेजना चाहिए। प्रकाशित होने वाले लेखों पर समुचित पारिश्रमिक की व्यवस्था है।

यदि आपने पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी विषय पर उपयोगी पुस्तक लिखी है और आप पुलिस विज्ञान में उसे कड़ी के रूप में प्रकाशित करवाना चाहते हैं तो हमें पांडुलिपि भेजें।

यदि आप कर्मियों के कार्य को लेकर कहानी या अन्य किसी विधा में लिखने में रुचि रखते हों तो हम ऐसे साहित्य का भी स्वागत करेंगे।

यदि पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी हिन्दीतर भाषा के उच्चस्तरीय लेख का अनुवाद किया हो और आपके पास अनुवाद प्रकाशन का कापीराइट हो अथवा उनके कापीराइट की आवश्यकता न हो तो ऐसे लेख/सामग्री भी प्रकाशनार्थ आमंत्रित हैं। प्रकाशित लेखों पर समुचित मानदेय देने की व्यवस्था है। लेख भेजते समय यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक/अनूदित व अप्रकाशित है तथा इस पर कोई मानदेय नहीं लिया गया है। अनूदित लेख के कापीराइट के संबंध में भी सूचित करें।

विषय आदि के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए पुलिस विज्ञान की नमूने की प्रति मंगाने के लिए संपर्क करें :--

संपादक
पुलिस विज्ञान
पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
ब्लाक-11, चौथी मंजिल
सी.जी.ओ. कम्पलैक्स, लोदी रोड
नई दिल्ली-110003
फोन : 24360371 एक्स. 253

वैब साइट — डब्लू डब्लू डब्लू.बीपीआरडी.जीओवी.इन
डब्लू डब्लू डब्लू. बीपीआरडी.एनआईसी.इन

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
गृह मंत्रालय
पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना

पुलिस, कारागार एवं न्यायालयिक विज्ञान से संबंधित विषयों पर हिन्दी में पुस्तक लेखन के लिए रचनाएं 30 सितंबर तक आमंत्रित की जाती हैं। मूल प्रकाशित पुस्तकों पर 5 पुरस्कार 30,000/- रु. प्रति पुरस्कार (एक पुरस्कार महिलाओं के लिए आरक्षित है), दो पुरस्कार अनूदित मुद्रित पुस्तकों के लिए 14,000/- रु. प्रति पुरस्कार (एक पुरस्कार महिलाओं के लिए आरक्षित है)। योजना के भाग दो में 40,000/- रु. के दो पुरस्कार हैं। जिसके लिए इस वर्ष के विषयों पर रूपरेखाएं आमंत्रित हैं। जिसमें सामान्य वर्ग के लिए **वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृति** तथा महिलाओं के लिए आरक्षित विषय **व्यावसायिक यौन कर्मियों का सुधार एवं पुनर्वसन** है। विस्तृत जानकारी के लिए कृपया संपादक (हिंदी), पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो (गृह मंत्रालय), ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सी.जी.ओ. कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से संपर्क करें।

(दूरभाष : 011-24362418, 24360371 एक्स-253 तथा फैक्स : 011-24362425)

अपराध विज्ञान तथा पुलिस विज्ञान में डाक्टरेट कार्य हेतु अध्येतावृति योजना

पुलिस विज्ञान तथा अपराध विज्ञान में डाक्टरेट कार्य हेतु ब्यूरो द्वारा 6 अध्येतावृतियों के लिए भारतीय नागरिकों से आवेदन पत्र आमंत्रित किए जाते हैं। इस योजना के तहत विज्ञापन प्रति वर्ष मई माह में भारत के सभी प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाता है। इसके लिए अंतिम तिथि 30 जून होती है। इसमें अभ्यर्थी को पी.एच-डी. के लिए विश्वविद्यालय से पंजीकृत होना आवश्यक है। इसमें अभ्यर्थी को पहले 2 वर्ष 8000/- रु. तथा तीसरे वर्ष 9000/- रु. तथा इसके साथ फुटकर खर्च के लिए 10000/- रु. तथा जिस संस्था से वह पंजीकृत होगा उसे 3000/- रु. प्रदान किए जाएंगे। विस्तृत जानकारी के लिए अनुसंधान एकक, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सीजीओ कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से संपर्क किया जा सकता है। पूर्ण जानकारी कार्यालय की वेब साइट www.bprd.gov.in में भी देखी जा सकती है। (संपर्क के लिए फोन नं. 01124360371/243)

पुलिस एवं कारागार संबंधी विषयों पर अनुसंधान परियोजनाएं आमंत्रित

पु.अनु.वि. ब्यूरो (गृह मंत्रालय) **पुलिस एवं कारागार** से संबंधित विभिन्न विषयों की 10 अनुसंधान परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए गैर सरकारी संगठनों, विश्वविद्यालयों व व्यक्तिगत शोधकर्ताओं को उनके संबंधित विश्वविद्यालयों के माध्यम से आवेदन आमंत्रित करता है। आवेदन भेजने की अंतिम तिथि 30 सितंबर होती है। विस्तृत जानकारी के लिए उपनिदेशक (अनु.) एवं सहायक निदेशक (सी.सी.), ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सीजीओ कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 (फोन नं. 01124362418 एवं 01124263872) पर संपर्क कर सकते हैं। तथा ब्यूरो की www.bprd.gov.in वेब साइट से भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।